सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

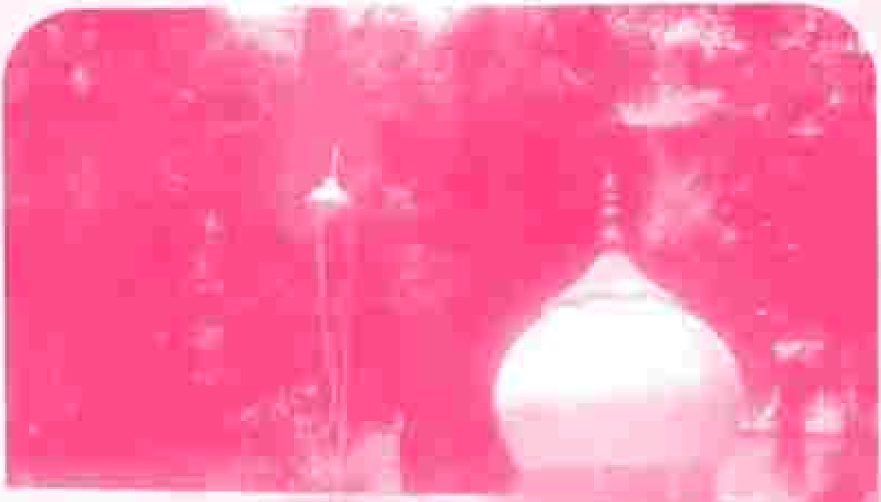

वर्ष : 44, अंक : 9
दिसम्बर 2011

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई 283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

आत्मानमेव मन्येत कर्तारं सुखदुःखयोः।
तस्माच्छ्रेयस्करं मार्गं प्रतिपद्येत नो त्रसेत्॥

सुख-दुःख का कर्ता व्यक्ति स्वयं ही होता है, ऐसा समझकर कल्याणकारी मार्ग का ही अवलम्बन लेना चाहिए, फिर भयभीत होने की कोई बात नहीं।

* * *

हितमेवानुरुध्यन्ते प्रपरीक्ष्य परीक्षकाः।
रजोमोहावृतात्मानः प्रियमेव तु लौकिकाः॥

परीक्षक – विवेकीजन (सारासारविचारद्वारा) ठीक-ठीक परीक्षा करके हितकर मार्ग का सेवन करते हैं, परन्तु रजोगुण और तमोगुण से आवृत बुद्धि वाले लौकिक मनुष्य (हिताहित का विचार न करके तत्काल) प्रिय (मालूम होने वाले आचार आदि) का सेवन करते हैं (इसलिए दुःखी होते हैं)।

* * *

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः।
सुखं च न विना धर्मात्तस्माद्धर्मपरो भवेत्॥

सम्पूर्ण प्राणियों की सभी चेष्टाएँ सुख-प्राप्त करने के लिए ही होती हैं और वह सुख बिना धर्माचरण के प्राप्त हो नहीं सकता, अतः धर्म में परायण रहना चाहिए।

* * *

मृत्योर्बिभेषि किं मूढ भीतं मुञ्चति किं यमः।
अजातं नैव गृह्णाति कुरु यत्नमजन्मनि॥

अरे मूर्ख (मनुष्य)! क्या तुम मृत्यु से डर रहे हो? डरे हुए को क्या मृत्यु छोड़ देती है? ऐसा समझ रहे हो तो यह तुम्हारी मूर्खता है। मृत्यु तो सबको काल का ग्रास बना देती है। वह तो जो जन्म ही नहीं लेता, उसी को नहीं पकड़ती है। इसलिए ऐसा प्रयत्न करो, जिससे पुनः जन्म ही न लेना पड़े।

* * *

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 44 अंक : 9

यस्मादिदं जगदुदेति चतुर्मुखाद्यं, यस्मिन्नवस्थितमशेषमशेषमूले।
यत्रोपयाति विलयं च समस्तमन्ते, दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः।।
चक्रं सहस्त्रकरचारू करारविन्दे गुर्वी, गदा दरवरश्च विभाति यस्य।
पक्षीन्द्रपृष्ठपरिरोपितपादपद्मो, दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः।।

जिस परमात्मा से यह ब्रह्मा आदिरूप जगत प्रकट होता है और सम्पूर्ण जगत के कारण भूत जिस परमेश्वर में यह समस्त जगत स्थित है तथा अन्तकाल में यह समस्त जगत जिसमें लीन हो जाता है, वे दीनबन्धु भगवान आज मेरे नेत्रों के सामने दर्शन दें। जिनके करकमल में सूर्य के समान प्रकाशवान् चक्र, भारी गदा और श्रेष्ठ शंख शोभित हो रहा है, जो पक्षिराज (गरुड़) की पीठ पर अपने चरण कमल रखे हुए है, वे दीनबन्धु भगवान् आज मेरे नेत्रों के समक्ष दर्शन दें।

दिसम्बर 2011

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सथांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	7
3.	योग में चित्त शुद्धि कैसे? –डॉ. जे. पी. शर्मा	11
4.	के योग वितमा – पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय	17
5.	सद्‌गुरु सत्ता एवं महाप्रभु जी – रामकुमार गोस्वामी	20
6.	किधर जाएँ	25
7.	दिव्य दृष्टि – जनक कुल श्रेष्ठ	26
8.	श्री प्रभु चरणों में समर्पित – राजेश कुमार सिंह	28
9.	योग आसन	29
10.	ईश्वर का अस्तित्व – कु. पूजा पाण्डेय	31
11.	उन्माद से प्राण रक्षा – जगदीश राए बंसल	34
12.	स्वस्थ रहने की रामबाण दवा	37
13.	सिद्धयोग साधक मण्डल दतिया का योग शिविर समारोह सम्पन्न – अनिल दुबे	38

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 140.00
द्विवार्षिक	: रु. 270.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

• *हमारा विशेष लेख*

कर्माशय और उसका भोग

योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

अखिलात्मा त्रिजगत–पावन भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने कर्म–गति की गहनता को समझाते हुए अर्जुन से कहा कि –

किं कर्म किमकर्मेति, कवयोऽप्यत्र मोहिता:।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि, यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।
कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं, बोद्धव्यं च विकर्मण:।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गति:।।

अर्थात् कर्म क्या है और अकर्म क्या है इस बात को बड़े–बड़े विद्वान भी नहीं समझ सके। अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन मैं तुम्हें कर्म का रूप समझाता हूँ जिसको समझ लेने के बाद तुम पाप–कर्मों से बच जाओगे। तुम कर्मों को भी समझो और उसके साथ ही अकर्मों को जानो। विकर्मों को समझते हुए अकर्मों के स्वरूप को भी समझ लो क्योंकि कर्मगति बहुत ही गहन है।

इस प्रकार से भगवान श्रीकृष्ण ने कर्मगति की गहनता को भली प्रकार से समझा करके अर्जुन को एक विशेष आदेश दिया और वह यह है कि –

कर्मण्यकर्म य: पश्येद–कर्माणि च कर्म य:।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्त: कृत्स्नकर्मकृत्।।
यस्य सर्वे समारम्भा: कामसंकल्पवर्जिता:।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहु: पण्डितं बुधा:।।
त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रय:।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति स:।।
निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रह:।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्।।

अर्थात् जो व्यक्ति कर्म के अन्दर अकर्म को देखे और अकर्म के अन्दर कर्म को देखे वह मनुष्यों में बुद्धिमान है। ऐसे व्यक्ति ठीक कर्म का करने वाला युक्त कहा गया है। जो व्यक्ति

वासनाओं के संकल्प को छोड़कर के कर्मों को आरम्भ करता है वह ज्ञानाग्नि के द्वारा कर्मसमूह का दहन कर डालता है। बुद्धिमान लोगों में उसको पण्डित कहा है। जो व्यक्ति कर्मफल की आसक्ति को छोड़कर नित्य–तृप्त और निराश्रय रहता है तो वह कर्म करता हुआ भी कुछ नहीं करता। क्योंकि जिसने सब प्रकार के परिग्रह को छोड़ दिया है एवं सब प्रकार की आशाओं से रहित हो करके अपने चित्त, आत्मे आप पर कन्ट्रोल करके केवल मात्र कर्तव्य बुद्धि से शरीर से ही कर्म करता है वह फिर पाप को प्राप्त नहीं होता। वैसे संसार भी के सभी प्राणियों के लिए कर्मों का विधान चार प्रकार से कहा गया है –

1. वह कर्म है जिनको हम पाप–कर्म और क्लिष्ट कर्म कहा करते हैं।

2. वह कर्म है जिनको हम पुण्य के कर्म कहा करते है। यही कर्म दार्शनिक भाषा में अक्लिष्ट कर्म कहे जाया करते हैं।

3. वह कर्म है जो पाप और पुण्य के मिले–जुले कर्म हुआ करते है। और

4. वह कर्म है जो केवल मात्र कर्तव्य–बुद्धि से किये जाया करते हैं उन कर्मों में कर्ता के कृतत्व की भावना बिल्कुल नहीं रहती। इस कर्म विधान की शृंखला को इस प्रकार से समझ लेना चाहिए।

जैसे पाप कर्म– अर्थात् जो कर्म परिपीड़न के द्वारा कठोर हिंसा–वृत्ति से किये जाते है। अर्थात् मनुष्य अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए दूसरों को घोरतम कष्ट देकर भी अपने स्वार्थ की पूर्णता में लगा रहा करता है ऐसे कर्म पाप–कर्म कहलाया करते है। ये कर्म मनुष्य काम से क्रोध से लोभ और मोह से किया करता है। इस ही प्रकार से पुण्य–कर्म अर्थात् अक्लिष्ट कर्म वे कहलाते हैं जिन कर्मों में हिंसा–वृत्ति का नाम नहीं रहता। मनुष्य अपने स्वार्थ की सिद्धि करना चाहता है किन्तु सुख पाने के लिए यज्ञ, ज्ञान, तप आदि पुण्य कर्म किया करता है। इन कर्मों में परिपीड़न का लक्ष्य तो बिल्कुल नहीं रहता किन्तु सकामकर्म तो है ही। इसके अतिरिक्त तीसरी प्रकार के वे कर्म कहलाते हैं जिनमें मनुष्य अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए यज्ञ, ज्ञान, तप आदि कर्म पुण्य के लिए करता तो है किन्तु इनके बीच में पुण्य संवर्धन के लिए अर्थ पुण्य रूप स्वस्वार्थ की सिद्धि के लिए यदि किसी को पीड़ा देनी भी पड़ती है तो वह साधक व्यक्ति निःसंकोच पीड़ा दे डालता है। इस प्रकार के कर्मों को पाप और पुण्य के मिले–जुले कर्म कहा गया है। चौथे प्रकार के कर्म वे होते हैं जो केवल करने मात्र के लिए किये जाते है। उनके अन्दर पाप या पुण्य की कोई भी भावना नहीं होती। ऐसे कर्म अकर्म कहलाते है। आनन्दकन्द भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने ऐसे व्यक्ति का बड़े ही सुन्दर शब्दों में रूपक से समझाया है –

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ, च कृत्वापि न निबध्यते।।

गतसङ्गस्य मुक्तस्य, ज्ञानावस्थित चेतसः।

यज्ञायाचरतः कर्म, समग्रं प्रविलीयते।।

अर्थात् जो व्यक्ति मद–मत्सर रहित द्वन्द रूप सुख–दुख के जोड़े को सहन करने वाला एवं यदृच्छा से जो भी लाभ हो जाये, उस ही में सन्तुष्ट रहने वाला है, जिसका मन सिद्धि और असिद्धि में समान रहता है। जो बिल्कुल गतसंग है, जिसका चित्त ज्ञानावस्थित है ऐसा व्यक्ति यथार्थ में कोई कर्म करता भी है तो वह कर्म कर्म नहीं कहलाता अकर्म कहलाता है। ऐसे कर्मों का विलय स्वतः ही हो जाया करता है, इसी कर्म रूपक को समझाते हुए इस चतुर्विध कर्म जाति को भगवान श्री पतंजलिदेव जी महाराज ने इस प्रकार से अभिव्यक्त किया है–

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्।

– कैवल्यपाद 7

अर्थात् आशुक्लाकृष्ण कर्म योगियों के होते हैं और शेष तीन प्रकार के कर्म संसार वालों के हुआ करते हैं। इस सूत्र पर पढ़िये व्यासदेव जी का भाष्य–

चतुष्पात् खल्वियं कर्मजातिः कृष्णाशुक्लकृष्णा, शुक्ला, अशुल्काकृष्णाचेति। तत्र कृष्णा दुरात्मनाँ, शुक्लकृष्णा बहिः साधनसाध्या तत्र परपीडानुग्रहद्वारेण कर्माशयप्रचयः। शुक्ला तपःस्वाध्यायवताम् सा हि केवले मनस्यायतत्वादबहिः साधनाधीना न परान् पीडयित्वा भवति। अशुक्लाकृष्णा संन्यासिनां क्षीणक्लेशा नां चरमदेहानामिति। तत्राशुक्लं योगिन एव फलसंन्यासादकृष्णं चानुपादानात्। इतरेषान्तु भूतानां पूर्वमेव त्रिविधमिति।। 7।।

अर्थात् यह कर्म जाति चार प्रकार की है– कृष्णा, शुक्लकृष्णा, शुक्ला, आशुक्ला कृष्णा। उनमें से कृष्ण कर्म पापियों के व दुरात्माओं के हुआ करते हैं और इसके बाद शुक्लाकृष्णा कर्माशय बाहर के साधनों के आधीन हुआ करता है। मनुष्य संस्कारवश कभी किसी को पीड़ा या दुःख देता है और कभी किसी पर अनुग्रह करता है। इस प्रकार से इस कर्माशय का पाप–पुण्य रूप उभय फलात्मक प्रचय हुआ करता है। उसके बाद तीसरा कर्माशय शुक्ल अर्थात् पुण्य प्रधान हुआ करता है। यह कर्माशय तप और स्वाध्याय या ध्यानाभ्यासियों का केवल मात्र मन से सम्बन्ध रखने वाला होता है। इसमें बाहर के साधनों की आवश्यकता नहीं होती और न ही पर–पीड़ा आदि का कोई कर्माशय बनता है। इसके बाद चौथा कर्माशय आशुक्लाकृष्ण कहलाता है। आशुक्लाकृष्ण का अर्थ है, जिस कर्माशय में न पाप ही होते हैं और न पुण्य ही हुआ करते हैं, यह कर्माशय केवल मात्र कर्तव्यबुद्धि से ही किया जाया करता है। यह कर्माशय केवल मात्र संन्यासियों का, चरम–देहधारियों का होता है। चरम–देह का अर्थ है कि जो लोग कृतकृत्य हो चुके हैं और यह उनका शरीर अन्तिम शरीर है अर्थात् पुण्य–पापात्मक विपाकार भी उनका कर्माशय समाधि के द्वारा क्षीण हो चुका है और वे लोग सर्वकर्मन्यास की स्थिति को प्राप्त कर चुके हैं। इसलिए ऐसा कर्माशय केवल मात्र चरम–देहधारी योगियों का अथवा संन्यासियों का ही हुआ करता है। त्रिविपाकारूपी कर्माशय केवलमात्र सांसारिक लोगों

का ही हुआ करता है। इस कर्माशय का प्रचय क्लेशमूलक होने से ही हुआ करता है।

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश इन पाँच प्रकार के क्लेशों का वर्णन पहले किया जा चुका है। ये पाँचों क्लेश ही कर्माशय को जन्म देने वाले हुआ करते हैं। चरम देह धारी योगी लोग जब सब प्रकार से कर्मन्यास कर चुकते है कुछ समय, क्योंकि उनके कर्म दग्धबीज भाव को प्राप्त हो जाया करते हैं। इसलिए उन लोगों के कर्म कर्माशय प्रचय में समर्थ नहीं होते। इसलिए कर्माशय को केवलमात्र क्लेशमूलक ही कहा गया है। यह कर्माशय किस-किस प्रकार से कर्म विपाक को पैदा करता है, वह सब हम इसी लेख में आगे चलकर समझायेंगे। इससे पहले यह विचार लेना बहुत ही आवश्यक है कि कर्म विपाकारम्भी कर्माशय कितने प्रकार का हुआ करता है। कुछ कर्माशय दृष्ट जन्म संवेदनीय कहलाया करता है और कुछ कर्म इस प्रकार के हुआ करते है जिनका कर्माशय अदृष्ट जन्म संवेदनीय कहलाता है। जो कालान्तर में अर्थात् जन्म-जन्मान्तर में अपने फल का प्रकाश किया करता है। भगवान पतंजलिदेव ने इस दृष्टजन्म संवदेनीय औ . अदृष्ट-जन्म-संवेदनीय कर्माशय को इस प्रकार से बतलाया है -

क्लेशमूल: कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीय:

-साधनपाद 12

अर्थात् यह क्लेशमूलक कर्माशय दृष्टजन्मवेदनीय और अदृष्टजन्म-संवेदनीय दो प्रकार का हुआ करता है। इस सूत्र पर श्री व्यासदेव जी महाराज ने इस क्लिष्टाक्लिष्ट वृत्तियों के द्वारा बनने वाले दृष्टादृष्टजन्म-संवेदनीय के विषय में जो विचार अभिव्यक्त किये हैं उनको अग्रांकित पंक्तियों में पढ़ लीजिए, जिससे क्लेशमूलक दृष्टादृष्टजन्म-संवेदनीय पुण्यपापात्मक विपाकारम्भी स्वरूप का पूरी तरह से ज्ञान हो सके।

(शेष अगले अंक में)

भगवन्नाम- संकीर्तन से वास्तविक आरोग्य की प्राप्ति

आत्यन्तिकं व्याधिहरं जनानां चिकित्सिकं वेदविदो वदन्ति।

संसारतापत्रयनाशबीजं गोविन्द दामोदर माधवेति।।

वेदवेत्ताओं का कहना है कि गोविन्द, दामोदर और माधव - ये नाम मनुष्यों के समस्त रोगों को समूल उन्मूलन करने वाले भेषज हैं और संसार के (आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक-इन) त्रिविध तापों का नाश करने के लिए बीजमन्त्र के समान हैं।

योग - वार्ता

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

(गतांक से आगे)

केन्द्र निदेशक – श्री महाराज जी! योग में कुण्डलिनी जागरण का बहुत महत्व बताया जाता है। इसका जागरण कैसे होता है कृपया बतायें?

पूज्य गुरुदेव जी –लल्ला! कुण्डलिनी जागरण के लिए हठयोग में भस्त्रिका का अभ्यास करना होता है। भस्त्रिका चलाने से यह विशेषता होती है कि पाँचों प्राण वायु इकट्ठा हो जाती है। एकत्रित पाँच प्राणवायु की ठोकर कुण्डलिनी पर पड़ती है। वेग से आघात पड़ने पर कुण्डलिनी में स्पन्दन होने लगता है। इस स्पन्दन से तरह–तरह की अनुभूतियाँ होने लगती हैं। कुण्डलिनी सुषुम्ना का स्पर्श करती है सुषम्ना में ही ब्रह्म नाड़ी, नाड़ी चित्रा तथा व्रजणी नाड़ियां हैं। इनमें से कुण्डलिनी व्रजा को स्पर्श करती है तो जड़ समाधि लगती है, चित्रिणी का स्पर्श करती है तो देव दर्शन होते हैं, ब्रह्म नाड़ी का स्पर्श करे तो तेज का दर्शन होता है। यह तो हुआ हठयोग में प्राणायाम से। दूसरा तरीका है मन की ताकत से कुण्डलिनी जगाने का। मन को ही मूलाधार में ले जाया जाये, मन को ही केन्द्रित किया जाये तो कुण्डलिनी का जागरण हो जाता है। सद्गुरु की कृपा से उनके तेज से ब्रह्मनाड़ी को कुण्डलिनी प्रवेश कर जाये तो योगी समाधि की ओर चला जाता है। रही तन्त्र की बात तन्त्र मार्ग में तो मेरा विशेष प्रवेश नहीं है। तन्त्र तो योग सिद्धान्त के विपरीत पड़ता है। योग के अनुकूल नहीं है। विशेष रहस्य हो तो पता नहीं, नहीं तो इसमें तो –

ध्यायतो विषयान् पुसः संगस्तेषूपजायते
संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते।।
क्रोधाद् भवति संमोह संमोहत् स्मृतिविभ्रमः
स्मृति भ्रशात बुद्धिनाशो बुद्धिनाशातप्रणश्यति।।

अन्त में प्रणश्यति की डिग्री को प्राप्त हो जाता है। कुछ लोग कहते हैं संभोग से समाधि की प्राप्ति होती है जो रज कहते हैं। होगा इसमें कोई रहस्य की बात यह तो वही जाने किन्तु यह बात योग सिद्धान्त के विपरीत है इसमें पतन अधिक है। लाभ नहीं है। योग का सिद्धान्त तो यह है कि योगी ज्ञानीन्द्रयों के व्यापार को बन्द करके भीतर की ओर अभिमुख करके दिव्यता की ओर लगाते हैं। कर्मेन्द्रिय का व्यापार बन्द है कि भीतर की अन्तरानुमति हो रही है यह योग की ओर जाता है। कर्णेन्द्रिय को बन्द करके भीतर के दिव्य नाद को सुनते हैं यह योग की ओर जाना है यह मुक्ति की तरफ जाना है इसी प्रकार से चमड़ी से बाहर का स्पर्श न करके भीतर से दिव्य

स्पर्श का अनुभव होता है यह योग की ओर जाना है। इसी प्रकार से रसना का बाह्य व्यापार बन्द करके रसना से भीतरी की अनुभूति होती है यह योग है पातांजल सूत्र है। 'जिह्वाग्रे रस संवित, जिह्वा के अग्र भाग में मन को स्थिर कर देने पर दिव्य रसों का साक्षात्कार होता है। ऊपर से तालू विवर में आया हुआ दिव्य अमृत रस का पान करता है यह योग का दाता है। इस प्रकार से योग दिव्य अमृत का पान करता है और ध्यान का अभ्यास करते – करते मुक्ति की ओर चला जाता है। यह योग सम्प्रज्ञात योग है। सम्प्रज्ञात योग को भी योग माना है।

वैसे तो पतंजली जी ने 'योगश्चित्त वृत्ति निरोध:' कहकर योग की परिभाषा कही है। चित्त वृत्तीनाम् नितरा रोध: योग चित्त वृत्तियों का समूलोन्मूलन ही योग कहलाता है। योग: वै समाधि समाधि वै योग: समाधि को ही योग कहते हैं। समाधि समतावस्था जीवात्म परमात्मन: जीवात्मा और परमात्मा की समतावस्था को समाधि व योग कहते हैं। यह निर्बीज समाधि की बात है निर्बीज समाधि में बुद्धि और पुरुष का सम्बन्ध टूट जाता है इसी से जन्म–मरण का चक्र टूट जाता है। मैंने अपने कल के व्याख्यान में बताया है। जड़ और चेतन की गाँठ टूट जाती है। आत्मा से प्रकाश पाकर बुद्धि चेतन हो जाती है। बुद्धि ने अपना रूप आत्मा को दिखा दिया है इसलिए हम लड़के हैं, स्त्री हैं, पुरुष हैं, दु:खी हैं, सुखी हैं, युवा हैं, बीमार हैं आदि आत्मा में भासित होता है। इसी से जन्म–मरण का क्रम बना हुआ है। *चित्त वृत्तीनाम् नितराय् रोधः योग:।* सभी वृत्तियों का निरोध हो जाये तभी योग कहलाता है और यही निर्बीज समाधि कहलाती है न रहेगी बाँस, न बजेगी बासुरी। आत्मा केवली भाव में आ जाता है। केवलीभाव अर्थात् अकेलापन इस अवस्था के लिए शास्त्र का लेख है।

भिद्यते ह्रदयग्रन्थिरच्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयते चास्य कर्माणि तस्मिन दृष्टे परावरे।।

तस्मिन् परावरे दृष्टे ह्रदय ग्रन्थि भिद्यते, ह्रदय ग्रन्थि टूट जाती है। सभी संशयों का नाश हो जाता है। क्षीयते चास्य कार्माणि तस्मिन दृष्टे परावरे सभी कर्मों का क्षय हो जाता है कर्म बीज नष्ट हो जाते हैं। मायिक बीज समाप्त हो जाता है। गुणात्मिका विषय नहीं रहता आत्मा अद्वैत स्वरूप में अव्यवस्थित हो जाता है। सम्प्रज्ञात को भी योग माना है। पंचों ज्ञानेन्द्रिय जब बाहर दुनिया से, बहिर्मुखी वृत्ति से शब्द स्पर्श का भोग करती है तो यह भोग कहलाता है। इन्हीं विषयों को जब हम आभ्यन्तर वृत्ति से एकाग्र करके इन विषयों को साधन के रूप में लेते हैं तो यह ही दिव्य हो जाते हैं और मुक्ति के दाता बन जाते हैं। चमड़ी का बाह्य व्यापार बन्द करके जब भीतर के दिव्य स्पर्श का अनुभव करते है तो यह योग की ओर अपवर्ग की ओर ले जाने के साधन बन जाते हैं। इसी प्रकार से शब्द, स्पर्श रस गन्ध की बात है। यह सब सम्प्रज्ञात योग कहलाता है। इसमें कुछ न कुछ अनुभव होता रहता है, ज्ञान होता रहता है। कालान्तर में यह सात्विक वृत्ति भी शान्त हो जाती है। जिस प्रकार से अग्नि की चिन्गारी ईंधन को समाप्त करके अन्त में स्वयं भी शान्त व खत्म हो जाती है उसी प्रकार से वृत्तियां भी अन्त में आत्म दर्शन तक

पहुँचकर स्वयं ही शान्त हो जाती है। जितनी भी सिद्धियाँ योग में सुनने में आती है वे सब सम्प्रज्ञात में ही होती हैं।

असम्प्रज्ञात में कोई सिद्धियां नहीं है। भगवान पतंजलिदेव एक सूत्र में कहते हैं – ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः। ये सिद्धियाँ व्युत्थान में तो सिद्धिया हैं किन्तु समाधि में तो विघ्न ही है। सम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि हो जाने पर योगी को विकरण भाव हो जाता है। अर्थात् बिना कर्णों के सुनाई देता है, बिना चक्षु के देखता है।

'सः पश्यत्यचक्षुः क्षृणोत्यकर्णः' वह पाताल में प्रवेश कर जाता है आकाश गमन करता है यह उसकी स्वयं की ताकत है। बालक के रूप में बन जाता है जात्यन्तर परिणाम करके चीते के रूप में बन जाता है। यह एक सम्प्रज्ञात की पराकाष्ठा में होते हैं। इसलिए सम्प्रज्ञात को भी योग माना है। सम्प्रज्ञात योग की वृत्तियाँ आत्मा को केवली भाव की ओर ले जाती हैं। यही सम्प्रज्ञात योग है–

आरुरुक्षो मनुर्योगं कर्म कारण मुच्यते।
योगा रुढस्य तस्येव शमः कारण मुच्यते।।

जब योगी योग की सीढ़ियों पर चढ़ता है तो उसे कर्म करना पड़ता है, ध्यान करना पड़ता है। सम्प्रज्ञात समाधि के अन्दर ही योगी ब्रह्मलोक, साकेत लोक, गौलोक आदि को उसी प्रकार से देखता है जैसे हम एक दूसरे को देखते हैं। यह सब वृत्तियों के अन्तर्गत है। मैंने तुम्हें समझाया था जिस प्रकार से लोहे के आरे से लोहा कट जाता है उसी प्रकार से वृत्तियों से ही वृत्ति को पाटकर उपसमन कर केवल की ओर चला जाता है। गीता में भगवान ने कहा है –

या निशा सर्वभूतानाम् तस्यां जाग्रति संयमी।
यस्याम् जागृति भूतानि सा निशा पश्यंतो मुनेः।।

जिसमें सारे संसार के प्राणी सोते रहते हैं उसमें योगी जागता रहता है। अर्थात् सांसारिक प्राणी गुणात्मक भोगात्मक जगत में जगते है भोगों मे लिप्त रहते हैं उसमें मुनि लोग हैं भोगों से दूर रहता है और जिसमें संसार के प्राणी सोते हैं। उस अन्तर्जगत में योगी जागता है। वह भीतर के नजारे देखता है। संसार वालों को ब्रह्म, विष्णु, शिव, योगीराज लोग दिखाई नहीं देते हैं। किन्तु अर्न्तदृष्टि वाले योगियों को सब दृष्टि गोचर होते रहते है। अन्तर्जगत के द्रष्टा को बाहरी भोग छूटते चले जाते हैं। हमारे पास कितने ही शराबी, कबाबी लोग आये कम से कम दो–तीन हजार ऐसे व्यक्तियों के मांस, शराब हमने छुड़ाये। इन लोगों ने योग दीक्षा ली। श्री प्रभुजी की करुणा कृपा हुई। सम्प्रज्ञात योग के साधक बने। धीरे–धीरे इन लोगों के व्यसन छूटते गये। जब साधक को रूहानी आनन्द मिलता है तो बाहर के भोग स्वतः छूट जाते हैं। हमारी 10–12 वर्ष की एक बच्ची थी। उसका अच्छा ध्यान लगता था। उसे दिव्य रसों का साक्षात्कार होने लगा। जिह्राग्रे रस सैवित के अनुसार रसों का साक्षात्कार होने लगा उसकी जिव्हा तालू विवर में लग जाती थी खेचरी मुद्रा लग जाती थी और वह अमृत पान करती थी। दो महीने से

कुछ खा ही नहीं रही थी। माता–पिता बड़े चिन्तित हो गये। हमसे कहा – महाराज जी! यह खाती–पीती नहीं है पता नहीं इसे क्या हो गया है। मैंने पूछा – मुनिया 'तू खाती–पीती नहीं है?' कहने लगी– महाराज जी मुझे कोई भी चीज अच्छी नहीं लगती है। मैं तो चप–चप करती हूँ। आपने मुझे चप–चप करना सिखाया है उसी चप–चप से मुझे बिल्कुल भूख नहीं लगती है। लड़की पढ़ी–लिखी नहीं थी बेचारी इस चप–चप को क्या जाने। वह तो अमृत का पान करती थी। घर के सब काम करती थी कोई कमजोरी उसके शरीर में नहीं थी। इसी प्रकार योगी लोग गुफा–कन्दराओं में रहते हैं। खेचरी मुद्रा करते हैं अमृतपान करते हैं और हजारों वर्ष अपने शरीर को रखते हैं।

सूर्य

जीवन की रक्षा करने वाली सभी शक्तियों का मूल स्रोत सूर्य है। 'सूर्यो हि भूतानामायुः।' समस्त चराचर भूतों का जीवनाधार सूर्य है। यदि सूर्य न होते तो हम लोग एक क्षण भी जीवित न रह पाते। जीवन में सूर्य-रश्मियों का महत्त्व बहुत अधिक है। सूर्य की किरणें शरीर के ऊपर पड़ने से हमारे शरीर के अनेकों रोग-कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

सूर्य के प्रकाश से रोगोत्पादक शक्ति नष्ट हो जाती है। सूर्य से आरोग्य–प्राप्ति के विषय में अथर्ववेद में लिखा है –

मा ते प्राण उप दसन्मो अपानोऽपि धायि ते।
सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः।।

(5/30/15)

अर्थात् हे जीव! तेरा प्राण विनाश को न प्राप्त हो और तेरा अपान भी कभी न रुके अर्थात् तेरे शरीर के श्वास-प्रश्वास की क्रिया कभी बंद न हो। सबका स्वामी सूर्य-सबका प्रेरक परमात्मा तुझे अपनी मंगलकारिणी किरणों से ऊँचा उठाये रखे–तेरे शरीर को और जीवनी शक्ति को गिरने न दे।

सूर्य का प्रभाव मनुष्य के शरीर एवं मन पर बड़ा गहरा पड़ता है। चिकित्सकों का मत है कि सूर्य–रश्मि के सेवन से प्रत्येक प्रकार के रोग शान्त किये जा सकते हैं। यजुर्वेद में कहा गया है कि चराचर प्राणी और समस्त पदार्थों की आत्मा तथा प्रकाश होने से परमेश्वर का नाम 'सूर्य' है '*सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च*' अतएव इन्हें वेद में 'जीवनदाता' कहा गया है।

योग में चित्त शुद्धि कैसे?

– डॉ. जे. पी. शर्मा, पाँटा साहिब, सिरमौर (हिमाचल प्रदेश)

महर्षि पतंजलि देव ने योग दर्शन के (1/2) सूत्र में योग को परिभाषित करते हुए कहा है – 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' अर्थात् चित्तवृत्तियों का सम्पूर्णता से रुक जाना ही योग है। योगाभ्यास द्वारा चित्तवृत्तियों को बहिर्मुखी होने से रोक देना, मन को स्थिर निश्चल बना लेना, विषय – वासनाओं से दूर हटना तथा दसों इन्द्रियों को वश में रखना ही योग है। यहाँ यह समझ लेना परमावश्यक है कि **चित्त क्या है?** योग से पूर्व चित्त की तीन अवस्थायें होती हैं – जागृत, स्वप्न तथा सुषुप्ति। तीनों अवस्थायें तीन विकार वात, पित्त, कफ तथा तीन गुण सत्व, रज तथा तम से प्रभावित रहा करती हैं। इसी कारण प्राणी सदैव प्रकृति के गुणों से मोहित होकर तथा उनके वशीभूत होकर प्रायः शोक, रोग, दुःख तथा नाना प्रकार के कष्ट आदि भोगा करता है। अखिलात्मा परम योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण जी महाराज ने गीता (13/21) में कहा है –

जब एहि पुरुष प्रकृतिगत रहही। प्रकृति जन्य गुन भोगन्ह लहही।।
जीवन सोइ गुन संग भ्रमावा। इमि सुभ असुभ जोनि उपजावा।।

(हिन्दी गीता)

अर्थात्, प्रकृति में स्थित ही पुरुष प्रकृति से उत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थों को भोगता है और इन गुणों का संग ही जीवात्मा के अच्छी–बुरी योनियों में जन्म धारण करने का कारण है। मनुष्य की **जागृत अवस्था में चित्त**, हृदय प्रदेश में सूर्य के आकार सदृश्य होता है। सूर्य उदय होने पर जिस प्रकार सूर्य की किरणें सारे संसार पर छा जाती हैं तथा सभी जीव उदय काल के सूर्य का अनुभव प्रकाश से करने लगते हैं, ठीक उसी तरह हमारे चित्त की वृत्तियाँ शरीर के सारे अंगों पर अपना अधिकार कर लेती हैं तथा शरीर जागृतावस्था में आ जाता है। शरीरस्थ इन्द्रियाँ अपना–अपना कार्य करने लगती है। आँखें देखना शुरू कर देती हैं, कान सुनना शुरू कर देते हैं, जीभ रसास्वादन करने लगती है तथा नाक सूंघना शुरू कर देती है, इत्यादि इत्यादि। उसी तरह हमारी कर्मेन्द्रियाँ भी अपने–अपने कार्यों में तत्पर हो जाती हैं। यही चित्त की जागृत अवस्था कहलाती है। भौतिक वस्तुओं की अनुभूति ही चित्त की जागृत अवस्था की बाह्य वृत्ति है।

स्वप्नावस्था – वासनामय जगत – यह चित्त की दूसरी अवस्था है। सूर्य अस्त होने पर सूर्य की किरणें सूर्य में ही समा जाती हैं तथा दिन में सूर्य की तरफ देखा भी नहीं जाता था, शाम होने पर हम आँखें फाड़–फाड़ कर देख लेते हैं तथा गोलाकार अंगार पिण्ड के समान सूर्य भगवान हमें दिखाई देने लगते हैं। यह जागृतावस्था का अन्तिम पड़ाव है। दिन में किये गये

कार्यो से, भोजन इत्यादि से शरीर थका सा अनुभव करने लगता है जिससे शरीर की इन्द्रिया शिथिल हो जाती है तथा वृत्तियों को स्वतः ही खींचना आरम्भ कर देती है। नेत्र बन्द होने लगते है तथा शरीर चारपाई पर जाकर आराम करना चाहता है। जिस प्रकार से कैमरे मे चित्र खींचते समय लैंस पर आकृति की छाया छप जाती है, ठीक उसी तरह प्राणियो की इन्द्रिया जागृत अवस्था मेंअपने–अपने विषयों की छाया लेकर अन्तःकरण के पटल में छाप देती है। अतः दिन में देखे या अनुभव मे आये **विषयों की छाया** अन्तःकरण में संग्रहित हो जाती है तथा जागृत अवस्था के विषय जहाँ थे वही पड़े रहा करते है केवल उनकी छाया ही अन्तःकरण में अंकित हो जाती है, इन्हीं अंकित चित्रों की छाया को वासना कहा जाता है। स्वप्न में प्राणी का इन वासनाओं का अनुभव ही वासना जगत कहलाता है। उस अवस्था मे भी वह जागृतावस्था के समान ही संसार के सारे सुखों–दुःखों का अनुभव कर रहा है, यही चित्त की वासनामयी अन्तर्वृत्ति है। जिस प्रकार जागृत अवस्था में तरह–तरह के विषयों मे चित्त व्याप्त रहता है, उसी प्रकार स्वप्नावस्था में भी चित्त विभिन्न प्रकार के विषयों में ग्रस्त रहता है। अतः चित्त को किसी प्रकार भी आराम नहीं है। ये दोनों ही प्राणी के कर्मों के भोगों के कारण हे ' है।

सुषुप्ति अवस्था – जगत का अभाव : यह जीव के चित्त की तीसरी अवस्था है। प्राणी मात्र के भोजन, आहार, विहार तथा श्रम से थकावट आ जाती है तथा प्राणी नींद की तरफ बढ़ने लगता है, यही सुषुप्तावस्था कही जाती है। इसके अन्तर्गत जो जागृतावस्था के अनुभवों से स्वप्नावस्था में वासनायें थीं, वे भी सब निन्द्रा की गाढ़ता के कारण विलुप्त हो जाती है। जैसे अमावस्या की काली अंधियारी रात्रि में सारा जगत अंधकार मय हो जाता है, उसी प्रकार सुषुप्ति–अवस्था मे सभी वासनाओं का अविद्या मे लय हो जाता है, अन्तःकरण में सूक्ष्म अथवा स्थूल कोई सा भोग नहीं रहता तथा केवल आत्मा का सुख स्वरूप ही रह जाता है। यह संसार की ही तीसरी अवस्था होने पर भी आत्मबोध की सुखावस्था का नमूना है। अस्थाई और तमोऽभिभूत है। परन्तु जब मनुष्य को योग की प्राप्ति हो जाती है और समाधि से चित्त एकाग्र हो जाता है, उस समय वह आत्मस्वरूप के सुख का ही अनुभव करता है तथा सांसारिक दुःख–सुखों से अतीत हो जाता है। योग दर्शन में इसे **स्वरूपावस्थिति** कहा गया है।

हमारे सभी धर्मशास्त्रों में मनुष्य जीवन को अति दुर्लभ माना है, यथा –

बड़े भाग्य मानुष तन पावा। सुर मुनि दुर्लभ ग्रन्थन गावा।।

अर्थात् मानव का जन्म प्राप्त करना बड़ा भाग्यशाली होता है, इसके लिए देव, तथा ऋषि, मुनि भी भूमण्डल पर जन्म लेने को तरसते हैं। किसी ने ठीक ही कहा है –

मानव जीवन दुर्लभ है मिले न बारम्बार।

तरुवर से पत्ता झड़े, फिर न लगे डार।।

अर्थात् मनुष्य का जन्म हमें बार–बार नहीं मिलता, जैसे वृक्ष से पत्ता गिर जाने से पुनः पत्ता डाली पर नहीं लगता। चौरासी लाख योनियों में मनुष्य जन्म सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्य योनि

कर्मयोनि है, मनुष्य ईश्वर प्राप्ति के लिए कर्म कर सकता है जबकि अन्य योनियाँ जैसे – पशु, पक्षी इत्यादि भोग योनि हैं, इन्हें दूसरों के आधीन जीवन गुजारना पड़ता है क्योंकि उनमें बुद्धि, विवेक नहीं होता है। महाभारत में महर्षि व्यास देव जी ने कहा है –**'नहिं मानुषात श्रेष्ठतरं हि किंचित्'** अर्थात् मनुष्य जीवन से श्रेष्ठ और कोई जीवन नहीं है। आलस, निद्रा, भय तथा बच्चे पैदा करना तो पशुओं में भी होता है। हमारा शरीर पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच तनमात्रायें जैसे गंध, रूप, रस, स्पर्श तथा शब्द, मन और बुद्धि इन सत्रह तत्वों से मिलकर बना है, जो लिंग शरीर कहलाता है। अत: सूक्ष्म (लिंग) शरीर, पाँच प्राण (प्राण, अपान, समान, व्यान तथा उदान) तथा पाँच कोशों (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय) से मिलकर बना है। शरीर में बहत्तर करोड़, बहत्तर लाख, दस हजार दो सौ एक नाड़ियों का जाल फैला हुआ है। नाड़ियों में ईडा, पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ियाँ प्रधान होती हैं। जीवन इन्हीं के सहारे चलता है। योग में सुषुम्ना ज्ञान पटल खोलने का कार्य करती है। सुषुम्ना शरीर में मूलाधार से सहस्रार तक व्याप्त है, जो सर्पनाड़ी अथवा कुण्डलिनी का गमन पथ होता है। 'सुषुप्त कुण्डलिनी महानाड़ी' जब जागती है, तो धीरे–धीरे ब्रह्माण्ड रूपी शरर के सारे छिपे रहस्य खोलती हुई सहस्त्रार में जाकर शिव के साथ सामंजस्य स्थापित करती है। साधक 'शिवोऽहं' का उच्चारण करने लगता है। मनुष्यों के शरीर में एक सौ सात मर्म स्थान बतलाये गये हैं जिनमें सिर, हृदय तथा वस्ति तीन प्रमुख हैं। इन तीन में भी हृदय सबसे प्रमुख होता है। इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के पाँच विषय,मन के विषय, आत्मा, मन और बुद्धि ये सब हृदय के आधीन होते हैं। हृदय से ही इन्हें रक्त, रस इत्यादि आहार रूप में मिलता है तभी ये अपने कार्यों में सक्षम होते हैं। इसी कारण हृदय को ईश्वर का स्थान कहा जाता है। अत: प्रकृति के विकारों से हृदय प्रदेश को सदैव स्वच्छ, पवित्र बनाये रखना आवश्यक है। गीता (18/61) में कहा गया है –

जो समरथ विभुलोकन्ह स्वामी। भूतन्ह उर बसि अन्तर्यामी।
सब जीवन्ह कर्मन्ह अनुसारा। भरमावत निजमाया द्वारा।।

(हिन्दी गीता)

अर्थात् हे अर्जुन, शरीर रूपी यंत्र में आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थित है। मानव पिण्ड सर्वश्रेष्ठ है, जिसमें ध्यान, उपासना, भजन, ज्ञान, कर्म, मोक्ष, योगसाधना, आत्मसाक्षात्कार तथा ईश्वर की परम दिव्य ज्योति का दर्शन अत्यन्त सुलभ है, जिसके पाने के लिए देवता भी लालायित रहा करते हैं। कितने ही ऋषि, मुनि, योगी, इसी मानव शरीर से मुक्ति लाभ ले चुके हैं। ध्रुव, प्रहलाद, राजा ययाति, बुद्ध, विश्वामित्र ऐसे अनेकों नाम हैं। यह सब उनके पूर्व जन्मों के संस्कार तथा प्रभु कृपा का ही प्रसाद था।

असंगता ही प्राणीमात्र का स्वरूप है – 'असंगो ह्ययं पुरुष:' अर्थात् शरीर में रहकर भी यथार्थ रूप में यह पुरुष शरीर से अलग रहता है। प्रकृति जनित गुणों का संग इनका सेवन

करता है क्योंकि जन्म जन्मांतरों के संचित संस्कार तथा विषय वासनायें जो सूक्ष्म शरीर में रहती है उनका नाश नहीं होता। अत: वही वासनायें प्राणी को उन गुणों का संग करने, अतृप्त इच्छाओं, कामनाओं की तृप्ति करने के लिए कर्म करने को प्रेरित तथा बाध्य किया करती है। प्राणी उनके पुण्य, पापकर्मों के परिणाम सुख, दु:ख, लाभ, हानि, मान, अपमान, जय, पराजय, बीमारी रोग, गृहक्लेश, बार-बार जन्म, मरण, शरीर प्राप्ति, ऊंच नीच, योनि इत्यादि को प्राप्त करता रहता है। ध्यान रखें, कर्ता-भोक्ता जीवात्मा ही होती है, परमात्मा कदापि नहीं। परमात्मा सर्वज्ञ है तथा जीवात्मा अल्पज्ञ है। मानव शरीर धारण करता है तथा इन्द्रियों, मन, बुद्धि सहित होता है, जबकि परमात्मा इनसे सर्वथा रहित है। सुख, दु:ख, लाभ, हानि, मान, अपमान से परमात्मा का कोई सरोकार नही है। अत: प्रकृति जड़ है। उसमें विकृति होती है। शरीर पंच तत्वों से बना है इसलिए उसमें विकृति होती है, शरीर घिसता है, थकता है, जीर्ण होता है, क्योंकि प्रकृति के पाँच तत्व तथा प्रकृति के तीन गुण समावस्था में नहीं रह पाते, घटते-बढ़ते रहते है। इसी कारण शरीर में रोग लग जाते हैं। जीवात्मा शरीर धारी को ही रोग सताया करते हैं। शरीर का धर्म मरण है। आत्मा अजर, अमर, अविनाशी है- 'आत्मा मरती नहीं, मर मर जाता शरीर- आत्मा चेतनशील है तथा शरीर अपने रूप बदलता रहता है। प्रकृति बदलती रहती है, उसी प्रकार शरीर भी बदलता रहता है। आत्मा समान रहती है अपना रूप नहीं बदलती है। परमात्मा गुणातीत है, सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान, अजर, अमर, चेतन, अनादि, अनन्त, ज्ञान स्वरूप, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, निर्विकार हैं। जीवात्मा परमात्मा का अंश है अत: परमात्मा के आधीन है। परमात्मा किसी के आधीन नही है। परमात्मा प्रकृति के कण-कण में समाया हुआ है। इसीलिए उसे सर्वव्यापक कहा जाता है।

हर प्राणी जन्म-मरण के मायाजाल से परेशान है, अत: मानव जीवन का उद्देश्य जन्म-मरण से मुक्ति पाना ही है। मोक्ष प्राप्ति के लिए बाहरी तथा भीतरी शुद्धि का होना अति आवश्यक है। घर में अगर झाड़ू न लगायें तो सारे घर में धूल, गन्ध जमा हो जाती है। ऐसे गन्दे घर में हम रहना पसन्द नहीं करते, ठीक उसी तरह हमारे चित्त में गत जन्मों की पापरूपी गन्दगी भरी रहती है, जब तक उस गन्दगी को बाहर नही निकाल पाते तब तक ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। कहावत है 'मन चंचल चित चोर' अर्थात् हमारा मन बड़ा चंचल गति वाला है, जिसकी गति सबसे तेज है। पल-पल क्षण-क्षण बदलता रहता है तथा वासनाओं की तरफ टकटकी लगाये रहा करता है, जबभी इसे अवसर मिलता है अपना वार खाली नहीं जाने देता। कुछ न कुछ उखाड़ पेंक करता रहता है। जैसे चोर चोरी करना छोड़ भी दे, तब भी मौका मिलते ही हेरा-फेरी कर ही डालता है - यथा -'चोर चोरी से जाय, पर हेरा फेरी न जाय' सत्य ही है।

चित्त की चंचल प्रकृति ही आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्ति में बाधक है। इसीलिए सभी सन्तों ने, ज्ञानियों ने, ऋषि-मुनियों तथा योगियों ने चित्त के निरोध की बात स्वीकारी है। अत: मन के आवेश तथा गति को रोकना ही योग है। मन को विषय विकारों से दूर करना, इन्द्रियों को

बहिर्मुखी होने से रोकना ही परम लक्ष्य है। गुरु योग वशिष्ठ ने कहा है कि मनुष्य का चित्त प्राणवायु से बंधा रहता है और नाना प्रकार के शुभा शुभ विचारों के कारण गतिशील रहता है, वश में नहीं रहता। अतः मन को वश में करने के लिए हमें अपने प्राण (श्वांस) पर विजय प्राप्त करना परमावश्यक है।

प्राण की गति को योगाभ्यास द्वारा कम करने तथा नियंत्रित कर देने से चित्त ठहर जाता है। प्राण तथा मन के निरोध के दो उपाय मुख्य हैं। (1) प्राणायाम तथा (2) ध्यान साधना। दोनों के प्रतिदिन के अभ्यास से चित्त को वश में किया जा सकता है। नाड़ियों की शुद्धि के लिए पद्मासन में बैठना आवश्यक है। शरीरस्थ नाड़ियों में जब तक मैल जमा बना रहेगा तब तक सुख की अनुभूति नहीं मिल सकती। योगाभ्यास द्वारा नाड़ियों की शुद्धि होने पर प्राण स्वतः ही शुद्ध हो जाता है। प्राण शुद्धि होने से अन्तःकरण की वृत्तियाँ भी शुद्ध हो जाती हैं। प्रायः ईडा, पिंगला में अशुद्धि व असन्तुलन होने से व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं। अतः यौगिक अभ्यासों के द्वारा इन व्याधियों से मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है। अष्टांग योग के अभ्यास से भी शरीर की नाड़ियाँ, व्याधि मुक्त हो जाती हैं। मानव शरीर तो नाड़ियों के जाल से भरा पड़ा है। इन नाड़ियों में प्रकुपित वायु, विकार, मैल, दुर्गन्ध, दोषादि का होना, उनका बाहर न निकलना, यही व्याधियों के कारण होते हैं। अतः स्वस्थ रहने के लिए नाड़ी शोधन आवश्यक है। शुद्धि के विषय में कहा गया है–

अद्भिर्गात्राणि शुष्यन्ति मनः सत्येन शुध्यन्ति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेनशुद्धयन्ति।।

(कल्याण वर्ष, 82/6)

अर्थात् जल से शरीर की शुद्धि होती है, सत्य से मन की शुद्धि, विद्या और तप से जीवात्मा की शुद्धि और ज्ञान से बुद्धि की शुद्धि होती है। शुद्धि से मतलब सूक्ष्म शरीर (अन्तःमन) की सफाई से है। जो संस्कार पिछले जन्म–जन्मान्तरों से सूक्ष्म शरीर में संचित पड़े हैं, उन्हें योगाभ्यास द्वारा बाहर निकालने से अन्तःकरण साफ हो जायेगा। अन्तःकरण साफ हो जाने से मन स्वयं ठहर जायेगा। अतः शांत चित्त बन जायेगा, क्योंकि जब संस्कार ही न होंगे तो मन इधर–उधर नहीं दौड़ेगा। भाव है कि अन्तःमन (भीतर की) शुद्धि हुए बिना प्राणी को स्थाई शान्ति नहीं मिल सकती और न ही योग की सिद्धि होगी। अतः जीव को जन्म–मरण, भव बन्धन से मुक्ति पाने का एक मात्र उपाय है – स्वाध्याय, सत्संग, ईश्वर आराधना, जप, तप, ध्यान, यम, नियम का पालन, तथा विभिन्न योगाभ्यास इत्यादि।

स्नान करने से बाहरी शरीर की सफाई हो जाती है। परन्तु शरीर नीरोग बनाने हेतु अपने खाने पीने की समुचित व्यवस्था तथा देखभाल करनी आवश्यक होती है। हमारे पूर्वजों ने इसीलिए आहार शुद्धि पर विशेष बल दिया है। '**आहार शुद्धौ सत्व शुद्धिः सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृति लम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।।**' अर्थात् आहार शुद्ध होने से बुद्धि शुद्ध हो जाती

है, सात्विकी हो जाती है और सात्विकी हो जाने से स्मृति तेज हो जाती है। स्मृति दृढ़ होने से प्राणी के दिल की सभी गाँठे खुल जाती हैं। मनुष्य आध्यात्मिक जगत की तरफ बढ़ने लगता है। ज्ञान प्राप्त करता है। शनै: शनै: ईश्वर की शरणागति से आत्मानुभूति प्राप्त करता है। अत: साधक को अपने खाद्य पदार्थों की तरफ विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इसीलिए कहा गया है – ''जैसा खाये अन्न, वैसा पाये मन।।'' अर्थात् सात्विक आहार से हमारे विचार, सोच, बुद्धि सात्विक बनने लगती है, रसीले, चटपटे, स्वाद वाले पदार्थ खाने से विचार तथा बुद्धि राजसी बनती है, एवं बासी भोजन, तामसिक पदार्थों जैसे अंडा, मांस, शराब खाने-पीने से तामसिक बुद्धि बनती है। हमारा शरीर प्रकृतिमय है। मन शरीर का प्रमुख केन्द्र है, जैसे प्रकृति में सूर्य है। सूर्य के बिना जीवन नहीं चल सकता, उसी भांति मन के बिना शरीर कार्यशील नहीं रह सकता। मन शरीर का राजा है, मन के ही आधीन शरीर की इन्द्रियां, बुद्धि इत्यादि हैं। अत: शुद्ध मन में शुद्ध आत्मा रहती है। मन की एकाग्रता से प्राणी भव बन्धन से मुक्ति पा सकता है। अत: हम सभी को अपने चित्त को शुद्ध रखने के उपाय करने ही चाहिए, तभी हमारा कल्याण होगा।

शोक संवेदना

■ ये सूचित करते हुए अत्यन्त दु:ख हो रहा है कि सालवन निवासी श्री सोमदत्त शर्मा जी की धर्मपत्नी का 11 नवम्बर 2011 को देहावसान हो गया है। इस दु:ख के अवसर पर परिवार के सभी सदस्यों को सिद्धयोग परिवार की ओर से हार्दिक संवेदना प्रकट करता है। श्री प्रभु जी दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान करें।

– सम्पादक सिद्धयोग

■ अत्यन्त दु:ख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि हिसार निवासी श्री ओमप्रकाश कक्कड़ जी का देहावसान दिनांक 8 नवम्बर 2011 को हो गया है। वह बहुत दिनों से मुँह के कैंसर से पीड़ित थे। सिद्धयोग परिवार शोक सन्तप्त परिवार को अपनी हार्दिक संवेदना प्रगट करता है। श्री प्रभु जी दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान करें।

– सम्पादक सिद्धयोग

"के योग वित्तमा"

– पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय, प्रवक्ता संस्कृत, गोरखपुर

ईश्वर की उपासना की विभिन्न विधियाँ है। व्यक्ति ने अपने कार्यावस्था क्षमता के अनुसार उपासना पद्धति को अपनाया है। समस्त पद्धतियाँ शास्त्र सम्मत है। सबका लक्ष्य भी एक है। वास्तव में जीव में उस ईश्वर का ही अंश है। यह अंश अपने अंशी से मिलने के लिए बेचैन रहता है। किन्तु हमारी अज्ञानता के कारण ऐसा हो पाना संभव नही है। यह अज्ञानता भी ईश्वर का रूप है। जो माया के रूप में विचरण करता रहता है। इसी से व्यक्ति प्रभावित रहता है। कबीर ने कहा है –

माया महा ठगिन हम जानी।
केशव के कमला है बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी।।
कहै कबीर सुनो भाई साधो यह सब अकथ कहानी ।।

जीव जन्म लेते ही अपने पूर्व कर्मो के आधार पर माया से आवेष्ठित हो जाता है। इसी कर्मों के आवेष्ठन को छुड़ाने के लिए शायद जीव को मनुष्य जन्म की प्राप्ति होती है। किन्तु मात्र एक जन्म से ही यह छुटने वाला नहीं है क्योंकि गीता में परम गति को प्राप्त करने के बारे में भगवान ने कहा 'अनेक जन्म संसिद्धिस्ततो याति परंगतिम्'' अर्थात् अनेक जन्मों के संस्कार बल के सिद्धि से व्यक्ति परम गति को प्राप्त करता है।

ईश्वर के दो स्वरूपों का वर्णन सर्वत्र मिलता है। जिसमें सगुण रूप और निर्गुण रूप दोनों के माध्यम से ईश्वर तक अपनी आध्यात्म यात्रा पूरी करनी पड़ती है। अर्जुन के मन में एक प्रश्न उठा कि दोनों की उपासना करने वालों में श्रेष्ठ कौन है? भगवान ने दोनों को श्रेष्ठ बताया। क्योंकि उनकी दो श्रेणी बतायी एक भक्त योगी दूसरा ज्ञानयोगी।

भक्त योगी के बारे में बताते हुए कहा कि –

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्य युक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मता:।।

अर्थात् जो साधक मुझ में मन को एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन – ध्यान में लगे हुए तथा अत्यधिक श्रद्धा से युक्त होकर मुझ सगुणरूप परमेश्वर को भजते हैं वे मुझको योगियों में अति उत्तम एवं मान्य योगी हैं। वास्तव में ईश्वर का सगुण रूप ही कालान्तर में निर्गुण रूप में बदल जाता है। कलिकाल में सगुण रूप की उपासना रूपसत्व आसान – सा जान पड़ता है। हिन्दू ईश्वर के सगुण रूप की उपासना करते हैं किन्तु मुसलमान के यहाँ मस्जिद में ईश्वर का

कोई स्वरूप नहीं होता लेकिन इन्हें भी ईश्वर का साक्षात्कार होता है। उन्हें किस ईश्वर का साक्षात्कार होता है। उनको ईश्वर (अल्ला) क्या रूप एवं आकार है यह वही से जाना जा सकता है। ध्यान की अतिविशिष्टा अवस्था निर्गुण ही है। सगुण उपासना का स्वरूप पतंजलिके योगसूत्र में भी जहाँ कहा गया है "वीतरागा विषयम् वा चित्तम्" अर्थात् वीतरागी पुरुषों के चित्त में अपने चित्त को मिला देना। तात्पर्य यह कि यदि हमारे ईष्ट कृष्ण हैं तो उनके रूप स्वरूप में पूरी तरह से अपने चित्त को मिला देना अर्थात् पैर से सिर तक के रूप एवं कार्यों के बारे में चिन्तन करते हुए उनका ध्यान करना। ऐसा चिन्तन साधक को अभ्यास के द्वारा लम्बे समय तक करने पर वह उस परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है। भगवान ने कहा कि ऐसा यदि मेरी उपासना करता है तो

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसार सागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थमय्या वेशित् चेतसाम्॥

अर्थात् हे अर्जुन ऐसे जो मेरे भक्त हैं जो हमारे स्वरूप में बहुत लम्बे समय तक अपने चित्त को लगाये रखते है। ऐसे साधक को मैं शीघ्र ही मृत्यु रूपी संसार से उद्धार कर देता हूँ। क्योंकि वे मेरे प्रति पूर्ण समर्पित वृत्ति वाला होकर कार्य करते है। साधन का यह सबसे सुन्दर और आसान साधन दिखाया है। किन्तु हे कलिकाल तुमने किसे नहीं अपना ग्रास बनाया। बुद्धि कब दिग्भ्रमित नहीं किया। साधक के पथ में भटकाव आ जाता है। सद्गुरुदेव भगवान की वह अमोघ वाणी याद आ रही है जब उन्होंने बड़े आवेश में कहा था – भाई केशव कहि – कहि कुकिये ना सोइये असरार रात दिवस के कूकड़े कबहुन लागी पुकार। किसी साधक के इस रहस्य के बारे में जानना ही नहीं चाहा उस समय कि यह अनेक जन्म से सिद्धि वाली वाणी है। अथवा उसी काल में घट जाने वाली अमोघ वाणी है।

ज्ञानी भक्त भी उस परमात्मा के ही प्रियभक्त है। ज्ञान मार्ग छुरे की धार की तरह बताया गया है। कदाचित ईश्वर में मन न लगे तो ज्ञानी की तरह कार्य करना चाहिए। योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने बताया कि इस संसार में अपना कुछ कर्म मानो ही नहीं, सब कर्म ईश्वर का है। इसलिए ईश्वर के लिए कर्म करते रहना चाहिए। यहाँ साधक को बड़ा सावधान होना पड़ेगा। क्योंकि सब कर्म ईश्वर के प्रति कैसे होगा। कौन सा ऐसा साधक है जो कर सकता है। उसके लिए गीता ने बड़े ही स्पष्ट रूप से ज्ञानी के साथ ही सामान्य साधक के लिए भी उपयुक्त ही जान पड़ेगा। पहली बात तो साधक को सब समुदाय में राग द्वेष, स्वार्थ ममता तथा अहंकार से रहित हो। इन्द्रियों को वश में रखने वाला हो। जो इन्द्रियाँ बाहरी रूप में कर्म कर रही हैं वे अन्तर्मुख वाली बने। किसी भी जीव के प्रति साधक में किसी प्रकार से उद्वेग कारण एवं अकारण क्रोध और ईर्ष्या आदि न आवे। अमर्ष अर्थात् दूसरे की उन्नति देखकर मन में किसी प्रकार का कष्ट न उत्पन्न हो बल्कि अच्छी वृत्ति बनी रहे। ऐसा नहीं कि साधक के मन में भी ऐसी आकांक्षा उत्पन्न हो काश मेरे पास भी ऐसा होता। वैसे एक बात तो ध्रुव सत्य एवं अनुभव पर

आधारित लिखा जा रहा है कि वह परमात्मा जिसको जितने की आवश्यकता होती है। उसकी पूर्ति करता है। कर्म से उसे बढ़ाया जा सकता है। यह भी ध्रुव सत्य है। व्यक्ति को इसीलिए कभी भी किसी चीज की कामना नहीं करना चाहिए। क्योंकि हमारी कामना की पूर्ति तो वह विश्वम्भर करते ही रहते हैं। अधिक में हर्ष नहीं कम में द्वेष नहीं। ऐसे जो ज्ञानी भक्त होते हैं उनको भी परमात्मा का साक्षात्कार होता है। वे भी भगवान के प्रिय होते हैं। ज्ञानी भगवान के परिपक्व भक्त हैं। वास्तव में उनमें किसी प्रकार का विकार होता ही नहीं है। वे हर समय समभाव में ही दिखते हैं। ऐसे साधक भी दिखते हैं। भगवान ने कुछ ऐसे भक्तों की श्रेणी बतायी और कहा कि ऐसे भक्त साधक मुझे प्रिय होते हैं –

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्ण सुख दुःखेषु समः सङ्ग विवर्जितः॥
तुल्य निन्दास्तुति मौनी सन्तुष्टो येन केनाचित्।
अनिकेतः स्थिरमति र्भक्ति मान्मे प्रियो नरः॥

भगवान भगवतो के लक्षणों के साथ कहा कि – जो शत्रु और मित्र मान तथा अपमान सर्दी और गर्मी, सुख दुःख में समान रूप से व्यवहार करे तथा आसक्ति से रहित हो। उसी प्रकार जो निन्दा और स्तुति में सम, मननशील तथा शरीर का निर्वाह जिस किसी प्रकार से हो तथा अनिकेत अर्थात् बिना घर वाला क्योंकि ऐसा अनिकेत ही आसक्ति से सरहित होगा उसकी बुद्धि भी स्थिर रहेगी। घर अत्यधिक आसक्ति का कारण होता है। अनिकेत का अर्थ ममता और आसक्ति से रहित होना भी है। ऐसे लक्षण भागवतो के भगवान ने बताये। इसलिए भागवत के ये बताये गये लक्षण के अनुसार जीवन यापन करने का प्रयास करने वाला साधक भी क्रमशः अभ्यास करते–करते आसक्ति से रहित हो जायेगा।

'मेरा मुझमें कुछ नहीं जो कुछ है सब तोर' ऐसी वृत्ति वाला साधक निश्चय परमागति का क्रमशः अधिकारी बन जायेगा।

इस प्रकार सगुण भक्त और ज्ञानी निर्गुण भक्त जो दोनों भगवान के प्रिय हैं। इस संसार सागर से गुरुकृपा का अवलम्ब लेकर मुक्ति के अधिकारी बन जाते हैं।

गीता की शास्त्रीय दृष्टि से योग का अधिकारी भक्त योगी तथा ज्ञान योगी दोनों हैं। भक्त योगी पूर्ण समर्पण वृत्ति से पात्रता को प्राप्त करते हुए उस परमात्मा तत्व का साक्षात्कार करते हुए मुक्त हो जाता है। ज्ञानी भक्त तत्वों का साक्षात्कार करते हुए अपना आत्म कल्याण करता है। उस परमात्मा के दोनों ही भक्त अति प्रिय हैं। सगुण भक्त जो भजन, पूजन एवं ध्यान में लगकर श्रद्धा के साथ उस ईश्वर का चिन्तन करता है। वह उत्तम सामान्य है योगी मुझको अत्यधिक प्रिय होते हैं। क्योंकि ये अबोध बच्चे की तरह कार्य करते हुए ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पित भाव वाले होते हैं।

सद्‌गुरु सत्ता एवं महाप्रभु जी

रामकुमार गोस्वामी, प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय, इंदौर (म.प्र.)

सद्‌गुरु देव भगवान बताया करते थे कि सद्‌गुरु सत्ता से तात्पर्य है सर्वोच्च सत्ता अर्थात् ऐसी शक्ति जो सब से ऊपर है और जिसके ऊपर कोई नहीं। अन्य शब्दों में इसे परमात्मा की सत्ता कह सकते हैं या भिन्न नामों में अल्ला, गॉड आदि कह सकते हैं। यह सत्ता ऐसी सत्ता है जो काल की हद से परे है अर्थात् ऐसी सत्ता तक काल नहीं पहुँच पाता – इसका अर्थ यह हुआ कि सद्‌गुरु सत्ता का कभी अंत नहीं होता है। सृष्टि के आदि से लेकर यह सत्ता विद्यमान थी और सृष्टि के अंत तक भी यह सत्ता रहेगी। इस सत्ता तक, सूर्य या चंद्र भी नहीं पहुँच पाता है, अग्नि तो पहुँच ही नहीं सकती। सद्‌गुरु सत्ता काल कर्म आदि से परे है। इस सत्ता को ईश्वर की सत्ता भी कहते हैं। हिन्दू धर्म में जैसे भगवान शिव, भगवान राम, भगवान कृष्ण को भी ईश्वर के रूप में माना जाता है, इसके रूप में भी सद्‌गुरु सत्ता प्रकाशित हुई है।

रामायण में एक प्रसंग आता है जब भगवान राम का जन्म हुआ तो शंकर भगवान उनके दर्शनार्थ गये और उनको प्रणाम किया। तुलसीकृत रामचरित मानस में यह प्रसंग आता है कि जब भगवान श्री राम ने अवतार लिया और माता सीता का अपहरण हो गया था और भगवान सीता को वन में खोजते फिर रहे थे, उसी समय भगवान शंकर आते हैं और भगवान राम को प्रणाम करते हैं। रामचरित मानस में यह प्रसंग निम्न प्रकार से आता है –

एक बार त्रेतायुग में शिव जी अगस्त्य ऋषि के पास गये, उनके साथ जगज्जननी भवानी सती जी भी थी। ऋषि ने संपूर्ण जगत् के ईश्वर जानकर उनका पूजन किया। मुनिवर अगस्त्य जी ने रामकथा विस्तार से कही, जिसको महेश्वर ने परम सुख मानकर सुना। फिर ऋषि ने शिव जी से सुंदर हरिभक्ति पूछी और शिव जी ने उनको अधिकारी पाकर (रहस्य सहित) भक्ति निरूपण किया। श्री रघुनाथ जी गुणों की कथाएँ कहते-सुनते कुछ दिनों तक शिव जी वहाँ रहे, फिर मुनि से विदा मांगकर शिवजी दक्षकुमारी सती जी के साथ घर (कैलाश) को चले, उन्हीं दिनों पृथ्वी का भार उतारने के लिए श्री हरि ने रघुवंश में अवतार लिया था। वे अविनाशी भगवान् उस समय पिता के वचन से राज्य का त्याग करके तपस्वी या साधुवेष में दंडक वन में विचर रहे थे – शिव जी हृदय में विचारते जा रहे थे भगवान के दर्शन मुझे किस प्रकार हों। प्रभु ने गुप्त रूप में अवतार लिया है, मेरे जाने से सब लोग जान जायेंगे। श्री शंकर जी के हृदय में इस बात को लेकर बड़ी खलबली उत्पन्न हो गई परंतु सती जी इस भेद को नहीं जानती थीं। तुलसीदास जी कहते हैं कि शिव जी के मन में (भेद खुलने का) डर था, परंतु दर्शन के लोभ से उनके नेत्र ललचा रहे थे। रावण ने (ब्रह्माजी से) अपनी मृत्यु मनुष्य के हाथ से मांगी

थी। ब्रह्मा जी के वचनों को प्रभु सत्य करना चाहते थे। मैं जो पास नहीं जाता हूँ तो बड़ा पछतावा रह जाएगा। इस प्राकर शिवजी विचार करते परंतु कोई भी युक्ति ठीक नहीं बैठती थी। इस प्रकार महादेव जी चिन्ता के वश हो गये। उसी समय नीच रावण ने जाकर मारीच को साथ लिया और वह (मारीच) तुरन्त कपटमृग बन गया। मूर्ख रावण ने छल कर के सीता जी को हर लिया। उसे श्री रामचंद्र जी के वास्तविक प्रभाव का कुछ भी पता न था। मृग को मारकर भाई लक्ष्मण सहित श्री हरि आश्रम में आये और उसे खाली देखकर (अर्थात् वहां सीता जी को न पाकर) उनके नेत्रों में आँसू भर आये। श्री रघुनाथ जी मनुष्यों की भांति विरह से व्याकुल हैं और दोनों भाई बन में सीता को खोजते हुए फिर रहे हैं जिनके कभी कोई संयोग–वियोग नहीं है, उनमें प्रत्यक्ष विरह का दु:ख देखा गया।

"श्री रघुनाथ जी का चरित्र बड़ा ही विचित्र है, उसको पहुँचे हुए ज्ञानीजन ही जानते हैं जो मंदबुद्धि हैं वे तो विशेष रूप से मोह के वश होकर हृदय में कुछ दूसरी ही बात समझ बैठते हैं। श्री शिव जी ने उसी अवसर पर श्री राम जी को देखा और उनके हृदय में बहुत भारी आनंद उत्पन्न हुआ। उन शोभा के समुद्र (श्री रामचंद्र जी) को शिवजी ने नेत्र भरकर देखा, परंतु अवसर ठीक न जानकर परिचय नहीं किया। जगत के पवित्र करने वाले सच्चिदानंद की जय हो, इस प्रकार कहकर कामदेव का नाश करने वाले शिव जी चल पड़े। कृपानिधान श्री शिव जी बार–बार आनन्द से पुलकित होते हुए सती जी के साथ चले जा रहे थे। सती जी ने श्री शंकर जी की वहदशा देखी तो उनके मन में बड़ा संदेह उत्पन्न हो गया। (वे मन ही मन कहने लगीं कि) शंकर जी की सारा जगत् वंदना करता है, वे जगत् के ईश्वर हैं। देवता, मनुष्य, मुनि सब उनके प्रति सिर नवाते हैं, उन्होंने एक राजपुत्र को सच्चिदानंद परधाम कहकर प्रणाम किया और उसकी शोभा देखकर वे इतने प्रेममग्न हो गये कि अब तक उनके हृदय में प्रीति रोकने से भी नहीं रुकती। जो ब्रह्म सर्वव्यापक, माया रहित, अजन्मा, अगोचर, इच्छा रहित और भेदरहित है और जिसे वेद भी नहीं जानते, क्या वह देह धारण करके मनुष्य हो सकता है। देवताओं के हित के लिए मनुष्य–शरीर धारण करने वाले जो विष्णु भगवान हैं, वे भी शिव जी की ही भांति सर्वज्ञ हैं। विज्ञान के भण्डार, लक्ष्मीपति और असुरों के शत्रु भगवान विष्णु क्या अज्ञानी की तरह स्त्री को खोजेंगे। फिर शिव जी के वचन भी झूठे नहीं हो सकते। सब कोई जानते हैं कि शिव जी सर्वज्ञ हैं। सती के मन में इस प्रकार का अपार संदेह उठ खड़ा हुआ, किसी तरह भी उनके हृदय में ज्ञान का प्रादुर्भाव नहीं होता था। यद्यपि भवानी जी ने प्रकट कुछ नहीं कहा, पर अन्तर्यामी शिव जी सब जान गये, वे बोले हे सती, सुनो, तुम्हारा स्त्री स्वभाव है – ऐसा संदेह मन में कभी न रखना चाहिए जिनकी कथा का अगस्त्य ऋषि ने गान किया और जिनकी भक्ति मैंने मुनि को सुनायी, ये वही मेरे इष्टदेव श्री रघुवीर जी हैं, जिनकी सेवा ज्ञानी मुनि सदा किया करते हैं। यद्यपि शिव जी ने बहुत बार समझाया, फिर भी सती जी के हृदय में उनका उपदेश नहीं बैठा – तब महादेव जी मन में भगवान की माया का बल जानकर मुसकराते हुए बोले – जो तुम्हारे मन

में बहुत संदेह है तो तुम जाकर परीक्षा क्यों नही लेती जब तक तुम मेरे पास लौट आओगी तब तक मैं इसी बड़की छांह में बैठा हूं। जिस प्रकार तुम्हारा यह अज्ञानजनित भारी भ्रम दूर हो (भली भांति) विवेक के द्वारा सोच–समझकर तुम वही करना। शिव जी की आज्ञा पाकर सती चली और मन में सोचने लगी कि भाई – क्या करूं? (कैसे परीक्षा लूं?)।

इधर शिव जी ने मन में ऐसा अनुमान किया कि दक्ष कन्या सती का कल्याण नही है, जब मेरे समझाने से भी संदेह दूर नहीं होता, तब (मालूम होता है) विधाता ही उल्टे हैं, अब सती का कुशल नही है। जो कुछ राम ने रच रखा है, वही होगा। तर्क करके कौन शाखा (विस्तार) बढ़ावे (मन में) ऐसा कहकर शिवजी भगवान श्री हरि का नाम जपने लगे और सतीजी वहां गई जहाँ सुख के धाम प्रभु रामचंद्र जी थे। सती बार–बार मन में विचार कर सीता जी का रूप धारण करके उस मार्ग की ओर आगे होकर चली जिससे (सती जी के विचारानुसार) मनुष्यों के राजा रामचंद्र जी आ रहे थे। सतीजी के बनावटी वेष को देखकर लक्ष्मण जी चकित हो गये और उनके हृदय में बड़ा भ्रम हो गया। वे बहुत गंभीर हो गये, कुछ कह नही सके, धीरबुद्धि लक्ष्मण प्रभु रघुनाथ जी के प्रभाव को जानते थे। सब कुछ देखने वाले और सबके हृदय की जानने वाले देवताओं के स्वामी श्री रामचंद्र जी सती के कपट को जान गये, जिनके स्मरण मात्र से अज्ञान का नाश हो जाता है, वही सर्वज्ञ भगवान श्री रामचंद जी हैं। स्त्री स्वभाव का असर तो देखो कि वहां (उन सर्वज्ञ भगवान के सामने) भी सतीजी छिपाव करना चाहती हैं। अपनी माया के बल को हृदय में बखानकर, श्री रामचंद्र जी हँसकर कोमल वाणी से बोले– पहले हाथ जोड़कर सती को प्रणाम किया और पिता सहित अपना नाम बताया – फिर कहा कि वृषकेतु शिवजी कहाँ हैं? आप यहाँ वन में अकेली किसलिये फिर रही हैं। श्री रामचंद्र जी के कोमल और रहस्य भरे वचन सुनकर सतीजी को बड़ा संकोच हुआ। वे डरती हुई (चुपचाप) शिवजी के पास चली, उनके हृदय में बड़ी चिंता हो गई कि मैंने शंकर जी का कहना न माना और अपने अज्ञान का श्री रामचंद्र जी पर आरोप किया। अब जाकर मैं शिवजी को क्या उत्तर दूंगी? सती जी के हृदय में अत्यंत भयानक जलन पैदा हो गई। प्रभाव प्रकट करके उन्हें दिखलाया। सतीजी ने मार्ग में जाते हुए यह कौतुक देखा कि श्री रामचंद्र जी सीता जी और लक्ष्मण जी सहित आगे चले जा रहे हैं। (इस अवसर पर सीता जी को इसलिए दिखाया गया कि सती जी श्री राम के सच्चिदानंदमय रूप को देखें, वियोग और दुःख की कल्पना जो उन्हें हुई थी दूर हो जाए तथा वे प्रकृतिस्थ हों) तब उन्होंने पीछे की ओर फिर कर देखा तो वहां भी भाई लक्ष्मण जी और सीता जी के साथ श्रीरामचंद्र जी सुंदर वेश में दिखायी दिये। वे जिधर देखती हैं, उधर ही प्रभु रामचंद्र जी विराजमान हैं और सुचतुर सिद्ध मुनिश्वर उनकी सेवा कर रहे हैं। सतीजी ने अनेक शिव, ब्रह्मा और विष्णु देखे जो एक से एक बढ़कर असीम प्रभाव वाले थे। (उन्होंने देखा कि) भांति–भांति के वेष धारण किये सभी देवता श्री राम चन्द जी की चरणवंदना और सेवा कर रहे हैं। उन्होंने अनगिनत अनुपम सती, ब्रह्माणी और लक्ष्मी देखी। जिस–जिस रूप में ब्रह्मा आदि देवता थे,

उसी के अनुकूल रूप में (उनकी) ये सब (शक्तियां) भी थीं।

इस प्रसंग से यह स्पष्ट होता है कि भगवान श्री राम, भगवान शंकर के ईष्ट पूज्य हुए और ईश्वर राम ही हुए।

इसके अलावा रामचरित मानस के उत्तरकांड में जब भगवान श्री राम का राज्याभिषेक हुआ तो वहाँ पर भगवान शंकर आते हैं और वहाँ राम की निम्न शब्दों में स्तुति करते हैं :-

'काकभुशुण्डि जी कहते हैं – हे गरुड़ जी – सुनिये, तब शिव जी वहा आये जहां श्री रघुवीर थे और गद्‌द् वाणी से स्तुति करने लगे, उनका शरीर पुलकावली से पूर्ण हो गया। हे राम! हे रमारमण (लक्ष्मीकांत)! हे जन्म-मरण के संताप का नाश करने वाले! आपकी जय हो, आवागमन के भय से व्याकुल इस सेवक की रक्षा कीजिए। हे अवधिपति! हे देवताओं के स्वामी!, हे रमापति! हे विभो! मैं शरणागत आपसे यही मांगता हूँ कि हे प्रभो मेरी रक्षा कीजिए। हे दस सिर और बीस भुजाओं वाले रावण का विनाश करके पृथ्वी के सब महान रोगों (कष्टों) को दूर करने वाले श्री रामजी! राक्षस समूह रूपी जो पतंगे थे, वे सब आपके बाणरूपी अग्नि के प्रचण्ड तेज से भस्म हो गये। आप पृथ्वीमण्डल के अत्यंत सुंदर आभूषण हैं, आप श्रेष्ठ बाण, धनुष और तरकस धारण किये हुए हैं, महान् मद, मोह और ममतारूपी रात्रि के अन्धकारसमूह के नाश करने के लिए आप सूर्य के तेजोमय किरण समूह हैं। कामदेव रूपी भील ने मनुष्य रूपी हिरणों के हृदय में कुभोग रूपी बाण मारकर उन्हें गिरा दिया है। हे नाथ! हे (पाप-तापका हरण करने वाले) हरे! उसे मारकर विषयरूपी वन में भूले पड़े हुए इन पामर अनाथ जीवों की रक्षा कीजिए। लोग बहुत से रोगों और वियोगों (दुःखों) से मारे हुए हैं यह सब आपके चरणों के निरादर के फल हैं। जो मनुष्य आपके चरण कमलों में प्रेम नहीं करते, वे अथाह भवसागर में पड़े हैं। जिन्हें आपके चरणकमलों में प्रीति नहीं है, वे नित्य ही अत्यंत दीन, मलिन (उदास) और दुःखी रहते हैं और जिन्हें आपकी लीला कथा का आधार है, उनको संत और भगवान् सदा प्रिय लगने लगते हैं, उनमें न राग (आसक्ति) है न लोभ, न मान है, न मद। उनको संपत्ति (सुख) और विपत्ति (दुःख) समान है, इसी से मुनि लोग योग (साधन) का भरोसा सदा के लिए त्याग देते हैं और प्रसन्नता के साथ आपके सेवक बन जाते हैं। वे प्रेमपूर्वक नियम लेकर निरन्तर शुद्ध हृदय से आपके चरण कमलों की सेवा करते रहते हैं और निरादर और आदर को समान मानकर वे सब संत सुखी पृथ्वी पर विचरते हैं। हे मुनियों के मनरूपी कमल के भ्रमर! हे महान् रणधीर एवं अजेय श्री रघुवीर। मैं आपको भजता हूँ। (आपकी शरण ग्रहण करता हूँ)। हे हरि! आपका नाम जपता हूँ और आपको नमस्कार करता हूं। आप जन्म-मरण रूपी रोग की महान् औषध और अभिमान के शत्रु हैं। आप गुण, शील और कृपा के परम स्थान हैं। आप लक्ष्मीपति हैं, मैं आपको निरन्तर प्रणाम करता हूँ। हे रघुनन्दन! (आप जन्म – मरण, सुख दुख रागद्वेषादि) द्वन्द्वसमूहों का नाश कीजिए। हे पृथ्वी की पालना करने वाले राजन्। इस दीन जनकी ओर भी दृष्टि डालिये। मैं आपसे बार-बार यही वरदान मांगता हूँ कि मुझे आपके चरण कमलों की अचल भक्ति और

आपके भक्तों का सत्संग सदा प्राप्त हो। हे लक्ष्मीपते! हर्षित होकर मुझे यही दीजिए। श्री रामचंद्र जी के गुणों का वर्णन करके उमापति महादेव जी हर्षित होकर कैलाश को चले गये, तब प्रभु ने वानरों को सब प्रकार से सुख देने वाले डेरे दिलवाये।

उक्त दोनों प्रसंगों से यह प्रकट होता है कि भगवान राम, भगवान शंकर के ईष्ट व ईश्वर थे।

इसके विपरीत वाल्मीकी रामायण में प्रसंग ऐसा है कि जब माता सीता का हरण हो गया और भगवान राम वन–वन परेशान होकर फिर रहे थे तब अगस्त्य ऋषि ने भगवान राम को दीक्षा दी और उपदेश दिया कि भगवान शंकर की आराधना करो तब भगवान राम ने भगवान शंकर की आराधना की और भगवान शंकर ने प्रकट होकर राम को यह आर्शीवाद दिया 'बेटा राम यह पाशुपत्त अस्त्र लो और इससे तुम रावण का वध करना' इस प्रसंग से यह प्रकट होता है कि भगवान शिव राम के आराध्य थे और राम ने उनकी आराधना की।

इसी प्रकार कृष्ण अवतार में एक प्रसंग आता है कि जब भगवान श्रीकृष्ण का जन्म हुआ तो भगवान शिव बालरूप कृष्ण के दर्शन करने आते हैं। एक प्रसंग यह भी आता है कि कृष्ण के दर्शन करने के लिए उनके साथ रास करने के लिए भगवान शिव ने गोपी का रूप बनाया था। इसके विपरीत यह प्रसंग भी आता है कि जब कृष्ण द्वारका में विराजमान थे तो ब्रह्मा उनके दर्शनार्थ आते हैं, उस समय भगवान कृष्ण भगवान शिव की आराधना कर रहे होते हैं। जब वे बताते हैं कि भगवान शिव की आराधना कर रहे हैं तो सामने वाले को आश्चर्य होता है और भगवान कृष्ण से कहते हैं कि आप तो विष्णु हो, कमलाकांत हो, तुम्हारे पूज्य शंकर कैसे हुए तब भगवान कृष्ण कहते हैं कि भगवान शिव मेरे ईष्टदेव हैं और पूज्य हैं।

इसी प्रकार एक प्रसंग यह भी आता है कि जब ब्रह्मा, विष्णु, महेश घूमते हुए जगदम्बा के लोक में पहुँचे तो वहाँ दूसरे ही ब्रह्मा, विष्णु महेश दिखे इससे यह प्रकट होता है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश से भी ऊंची कोई सत्ता है जो वहां मौजूद थी।

उपरोक्त सभी दृष्टांतों से यह बात प्रकट होती है कि वह परासत्ता अर्थात् सद्गुरु सत्ता जहाँ जहाँ जिस रूप में प्रकट हुई, वहाँ वही शक्ति ईश्वर के रूप में दर्शित हुई।

हमारे दादा गुरु महाप्रभु रामलाल जी महाराज के सत्संग के समय एक बार ध्यान करने वाले सत्संगियों ने देखा कि ब्रह्मा आदि देवता सभी महाप्रभु रामलाल जी की आरती पूजा कर रहे हैं। ध्यान से उठने पर यह प्रश्न महाप्रभु जी के सामने रखा गया तो महाप्रभु श्री रामलाल जी ने शरीर की ओर इशारा करके बताया कि यह पूजा इसकी नहीं थी बल्कि ऊपर की ओर इशारा करके कहा कि उसकी पूजा थी। इससे यह स्थिति भी स्पष्ट हुई कि महाप्रभु रामलाल जी के रूप में भी सद्गुरु सत्ता का अवतरण धरती पर हुआ था। श्री प्रभु जी पृथ्वी पर 16 शरीर बनाकर भिन्न–भिन्न स्थानों पर प्रकट हुए और एक शरीर से अब भी वे नेपाल हिमालय पर सशरीर विराजमान हैं और ऐसा कहा जाता है कि वे सृष्टि के अंत तक विराजमान रहेंगे।

जिन गुरु भाई, बहनों की ध्यान स्थिति अच्छी है, उन्हें समय–समय पर दर्शन भी प्राप्त होते रहते हैं। यह लेख लम्बा हो गया है, आगे के लेखों में प्रभु जी की लीलाओं के वर्णन के द्वारा यह बताने का प्रयास किया जायेगा कि महाप्रभु जी रामलाल जी के रूप में सद्गुरु सत्ता का अवतरण इस अग्निमण्डल पर हुआ था।

(क्रमशः)

किधर जाऊँ

(स्व.) डॉ. महेश चन्द्र चतुर्वेदी, डी. लिट्, फिरोजाबाद की पुस्तक 'प्रतिध्वनि' से साभार

जब हम प्रभु से कहते हैं
प्रभु हमको मार्ग बताओ
तब हम यही माँगते
अपनी इच्छा हमें बताओ
जो उनकी इच्छा है
वह ही है कर्त्तव्य हमारा
वही कर्म है वही धर्म है
यही मर्म है सारा
एक बात यह भी तो समझो
करना वही पड़ेगा
उनकी इच्छा के विरुद्ध
पत्ता भी नहीं हिलेगा।

प्रेषक : डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, 1 प्रोफेसर्स कॉलोनी, गोरखपुर

दिव्य दृष्टि

जनक कुलश्रेष्ठ, ग्वालियर (म.प्र.)

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को महाभारत के युद्ध काल में अपने विराट स्वरूप को देखने के लिए दिव्य दृष्टि दी थी। भगवान के भयानक स्वरूप को अर्जुन अपने चर्म चक्षुओं से देखने में असमर्थ रहे। तब श्रीकृष्ण जी ने विश्व रूप देखने की युक्ति यह कह कर दी कि ''दिव्य ददामि ते चक्षु।'' परन्तु वह कौन सी दिव्य दृष्टि थी, इसका उत्तर गीता में कहीं भी नहीं दिया है।

योगी सातवलेकर के मतानुसार ब्रह्म ने प्रकृति को दो भागों में विभक्त किया। प्रथम अष्टधा प्रकृति और दूसरी जीव बना आत्मा, जो परमात्मा का ही अभिन्न अंग है। ये ही दोनों भाग परमात्मा (ब्रह्म) के दो शरीर हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार। इस प्रकार यह आठ प्रकार से विभाजित मेरी अष्टधा प्रकृति है। यह अष्टधा प्रकृति जड़ है। दूसरी को जिससे यह सम्पूर्ण जगत धारण किया जाता है, मेरी जीव रूपा परा अर्थात चेतन प्रकृति है।

परमात्मा (ब्रह्म) के इन दोनों स्वरूपों को अखण्ड भाव से देखना है। इसी को वासुदेव सर्वम् या सियाराम मय सब जग जानी कहते हैं। जब हम अपनी इन्द्रियों के द्वारा संसार का दर्शन करते हैं, तब खण्ड भाव से देखते हैं। फिर भी इन्द्रियों का अनुभव भी अखण्ड रूप से अनुभव में आता है। जैसे नेत्रों का विषय 'रूप है। दो वस्तुओं के बीच में 'रूप' का अभाव नहीं है। वस्तुएं भिन्न हैं, परन्तु रूप सर्वत्र एक ही है। इसी प्रकार 'शब्द' आकाश का गुण है। शब्द कान से सुना जाता है। आकाश सर्वव्यापी है। इस कारण शब्द भी सर्वत्र व्याप्त है। 'स्पर्श' त्वग् इन्द्रिय का विषय है। त्वचा का सम्बन्ध वायु से है। वायु से ही त्वचा सर्दी–गर्मी का अनुभव करती है। और वायु सर्वत्र व्याप्त होने से स्पर्श की शक्ति वायु के कारण सर्वत्र है। 'रस' तन्मात्रा का सम्बन्ध रसना के अग्र भाग से सम्बन्धित है। जिव्हा के अग्रभाग से ही षटरसों की अनुभूति होती है। 'गन्ध' तन्मात्रा का सम्बन्ध पृथ्वी से है। पृथ्वी तत्व से ही सुगन्ध और दुर्गन्ध का अनुभव होता है। इस प्रकार शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध आदि पाँच तन्मात्राएं ही स्थूल पाँचों महाभूतों की जननी हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि ये पाँचों महाभूत सर्वत्र व्याप्त हैं। व्यवहार काल में साधक को जाग्रत अवस्था में खण्ड रूप से दीखती है, परंतु वास्तव में देखा जाय तो ये पाँचों तन्मात्राएं और इनसे उत्पन्न पाँचों महाभूत अखण्ड रूप से सर्वत्र व्याप्त हैं।

मनुष्य का अज्ञान ही एकत्व का अनुभव करते हुए भी सर्वत्र खण्ड रूप से देखता है। इसमें अहंता और ममता ही दोषी है। इन दोषों को ज्ञान दृष्टि से मिटाया जा सकता है। ज्ञान हो जाने पर अखण्ड रूप से सर्वत्र ब्रह्म तत्व का अनुभव होता है। उसी ब्रह्म का अविनाशी अंश

आत्मा है। इसी आत्मा से ही शरीर की सारी चेष्टाएँ होती हैं। जिस प्रकार गाड़ी के चक्र और अरे पृथक हैं। परंतु उन सबको मिलाकर चक्र (पहिया) कहा जाता है। आत्मा चेतन तत्व है। उसी की चेतना से सारे शरीर की चेष्टाएँ संचालित होती हैं। यदि आत्मा अपनी चेतन शक्ति को शरीर को देना बन्द कर दे तो शरीर नि:चेष्ट हो जाता है।

ब्रह्मार्पण ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतं।

ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं, ब्रह्मकर्म समाधिना।।

अर्थात् जिस पात्र से अग्नि में आहुति दी जाती है, वह ब्रह्म ही है। आहुति देने वाला भी ब्रह्म ही है। जिसमें आहुति दी जाती है, वह अग्नि भी ब्रह्म ही है। जैसे हवन करने वाला पुरुष स्त्रुवा , हवि, अग्नि आदि को ब्रह्म का ही स्वरूप मानता है। ऐसे ही जो कर्म में कर्त्ता, करण कर्म और पदार्थ आदि ब्रह्मरूप अनुभव करता है, उस पुरुष की ब्रह्म में ही कर्म समाधि होती है। तात्पर्य यह है उस पुरुष की सम्पूर्ण कर्मों में ब्रह्म बुद्धि होती है। उसके लिए सम्पूर्ण कर्म ब्रह्म रूप ही बन जाते हैं। ब्रह्म के सिवाय कर्मो का कोई अलग स्वरूप रहता ही नहीं है। ब्रह्म में कर्म समाधि होने से जिसके सम्पूर्ण कर्म ब्रह्म रूप बन गए हैं, उसे फल के रूप में नि:संदेह ब्रह्म की ही प्राप्ति होती है। कारण कि उसकी दृष्टि में अखण्ड ब्रह्म के सिवाय और किसी की स्वतन्त्र सत्ता रहती ही नहीं।

गुरु गीता भी यही भाव प्रगट करती है। ''ज्ञानं ज्ञेयं समं कुर्या नास्ति द्वितीयकं''। सांसारिक ज्ञान और ज्ञेय तत्व ब्रह्म के ज्ञान को समान रूप से देखने से द्वैत भाव नहीं रहता है। कारण कि प्रकृति या संसार क्रिया रूप ही है। पदार्थ एक क्षण भी स्थिर नहीं रहता है। उसमें निरंतर परिवर्तन होता रहता है। केवल राग के कारण पदार्थ की मुख्यता दीखती है। सम्पूर्ण क्रियायें अभाव में जा रहीं हैं। अत: संसार अभाव रूप ही है। भाव रूप से केवल अक्रिय तत्व ब्रह्म ही है। जिसकी सत्ता से अभाव रूप संसार भी सत्तावान दीखता है। यही खण्ड में अखण्ड के दर्शन करना है। वास्तव में ब्रह्म ही का विवर्त रूप संसार है। अत: ब्रह्म में संसार नहीं है और संसार में ब्रह्म के ही दर्शन करना है। यही ज्ञान खण्ड में अखण्ड ब्रह्म का ज्ञान होना ही ब्रह्म तत्व को जानना है।

भक्त दो प्रकार के होते हैं – 1) ज्ञानी भक्त, 2) शरणागत भक्त। अर्जुन शरणागत भक्तथे। ''शाधि मां त्वं प्रपन्नम्'' कहकर उन्होंने अपने को श्रीकृष्ण जी की शरणागति में डाल दिया था। भगवान का यह नियम है कि वे अपनी शरण में आये हुए भक्त के कल्याण करने का ध्यान रखते हैं।

''नष्टो मोहं''। अर्जुन को दो प्रकार का मोह हो गया था। प्रथम कौटम्बिक मोह और दूसरा शास्त्रीय मोह (गीता अध्याय 2 के श्लोक 52/53) अर्जुन के इन्हीं दोनों प्रकार के मोह को नष्ट करना ही भगवान का मूल उद्देश्य था। अर्जुन ने यह अपना मोह 'नष्टो मोह स्मृति लब्ध्वा' कहकर बतलाया कि मेरा यह मोह नष्ट हो गया है और मुझे स्मृति आ गई है कि आप (श्रीकृष्ण)

और मैं (अर्जुन) दोनों ही तत्वत: अखण्ड रूप से एक ही है। 'करिष्ये वचनं तव'। अब मैं बिल्ली के बच्चे की भांति आपकी आज्ञा का निर्मोही बनकर पालन करूँगा। अपने आपको जानना और उसका बोध हो जाना ही अर्जुन को प्राप्त हुई 'दिव्य दृष्टि' है।

श्री प्रभु चरणों में समर्पित

हँसता चेहरा आँखें नम, सामने तेरे अब हैं हम,
कल तक था मैं खोया - खोया, अन्तर्मन से खूब है रोया,
आज नजर में आया जब, बिन मांगे सब पाया तब,
नीको लागे तेरी मुस्कान, तुमही मोहन मेरो राम,
छ्टा तेरी अजब निराली, दिन में होली रात दीवाली,
कैसा अनुपम सूरत है, योगेश्वर की मूरत है,
यूं तुझको पाऊं यहां - वहां, जित देखूं अब जहां-जहां,
सूरज चंदा को चमकाया, सबमें तेरा रंग समाया,
तू सारे जग का दर्पण है, सबही तुझपे अर्पण है,
श्री प्रभु जी का अवतार हो, गीता का भगवत सार हो,
ओम, उमा, रमा, ब्रह्माणी हो, जड़-चेतन के स्वामी हो,
ब्रह्मा, विष्णु और महेश, तुझमें देखे अब राजेश,
तुम्ही मेरे मथुरा-काशी, हे रामचन्द्र गुफा के वासी।

- राजेश कुमार सिंह, बलिया

योगा - आसन

मनुष्य जीवन में स्वस्थ रहना बहुत सौभाग्य की बात है। शरीर ही योग साधन का मुख्य आधार कहा गया है। 'शरीर माद्यं खलुधर्म साधनम्'। ये गीता में स्वस्थ रहकर ही साधना की पूर्णता का संकेत मिलता है। एक जाना – माना श्लोक है –

युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नाववोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

अर्थात् साधक का आहार – विहार उचित होना चाहिए। 'युक्त' – इस शब्द पर ध्यान देना आवश्यक है। आहार–युक्त होना चाहिए। सर्वप्रथन आहार सात्विक हो जो शरीर को स्वस्थ रखे, दीर्घायु दे मन को शान्ति दे। दूसरा उचित मात्रा में सेवन किया जाये। अधिक भोजन करने वाले को योग सिद्ध नहीं होता जो बिल्कुल खाते न हो उनको भी योग सिद्ध नहीं होता। कुछ लोग व्रत अधिक करते हैं। व्रत अधिक करने से शरीर की धातुऐं क्षीण होने लगती हैं। जिससे बीमारियों के पलने का भय हो जाता है। अतः साधक को समुचित आहार पर ध्यान देना ही चाहिए अन्यथा व्याधियां घेर लेती हैं। व्याधि को योग साधन का प्रथम व्यवधान या अन्तराय माना गया है। योग साधन या आसन करने से शरीर में नव कोशिकाओं का निर्माण होने लगता है। क्रियाओं से रक्त का संचार ठीक प्रकार से होता है। विशेष करके महाप्रभु रामलाल जी महाराज द्वारा आविष्कृत

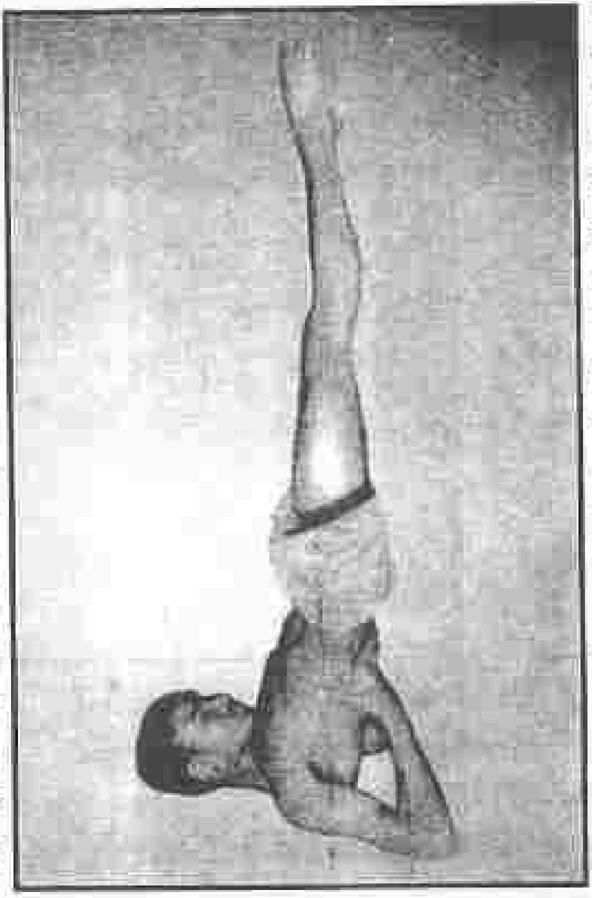

जीवन तत्व साधन ही कायाकल्प साधन है। आज का भौतिक विज्ञान भी इस बात को प्रमाणित कर रहा है कि योग आसन करने से स्टेम सेल हड्डियों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। यूरोप में एक विश्वविद्यालय के अनुसन्धाताओं ने एक अध्ययन से यह दावा किया है कि व्यायाम से रक्त निर्माण की क्षमता बढ़ती है जिससे व्यक्ति का समग्र स्वास्थ्य सुधर जाता है और शरीर के 'मिसेनमिशल स्टेम' सेल के बजा हड्डियों में तबदील हो जाती है। अतः जीवन तत्व साधन एव योग आसन स्वास्थ्य के लिए अचूक साधन है।

पिछले अंक में सर्वांगासन से शरीर के किस–किस भाग में क्या लाभ होता है इसका विवेचन किया गया था अब सर्वांगासन की विधि का वर्णन कर रहे हैं।

विधि – शवावस्थान से सीधे लेट जायें, उसके बाद अपने पैरों को धीरे–धीरे उठाते जायें, इतने ऊँचे उठाओ कि कण्ठ तक का सारा शरीर समसूत्रता में सीधा हो जाय, शरीर के बिल्कुल सीधा हो जाने के बाद अपने दोनों हाथों को नितम्ब स्थल से ऊपर के भाग कटि प्रदेश में इस प्रकार जमाओ कि ऊपर को उठा हुआ सारा शरीर समकाय शिरोग्रीव की रीति से बिल्कुल सीधा हो जाय। इसी का नाम सर्वांगासन है। यह सर्वांग आसन कई आसनों में विभक्त है जैसे हलआसन, कर्णपीडनासन आदि–आदि। अतः उपरोक्त बताई गई विधि के अनुसार किये जाने वाले इस साधन को ऊर्ध्व सर्वांगासन कहते हैं।

अभ्यास क्रम – पूर्व कथित नियम के अनुसार इसका अभ्यास भी धीरे–धीरे ही बढ़ाना चाहिए। वैसे यह आसन 1 मिनट से आरम्भ करके प्रतिदिन एक–एक मिनट बढ़ाया जा सकता है।

सर्वरोगोपशमनं सर्वोपद्रवनाशनम्।
शान्तिदं सर्वरिष्टानां हरेर्नामानुकीर्तनम्।।

हरिनाम संकीर्तन सभी रोगों का उपशमन करने वाला, सभी उपद्रवों का नाश करने वाला और समस्त अरिष्टों की शान्ति करने वाला है।

ईश्वर का अस्तित्व

– कु. पूजा पाण्डेय, गायत्री नगर, भातू फार्म, शुक्लागंज (उन्नाव)

चाहे उल्लू प्रकाश के अस्तित्व को माने या न माने, परंतु प्रकाश का अस्तित्व तो है ही। भले ही आप ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करें या अस्वीकार, पर उसकी सत्ता है और सदा–सर्वदा रहेगी। वह तीनों कालों में सदा प्रकाशित रहती है। आपके ढूंढना आरम्भ के पहले ही वह उपस्थित है। वह आपकी साँस से भी अधिक आपके निकट है और आपके हाथ–पैरों से भी अधिक आपके समीप है।

मेरा प्रश्न है – क्या आपका अस्तित्व है, या नहीं?' यदि आप कहते हैं – 'नहीं', तो ये सच नहीं है; क्योंकि मैं अपने सामने बलिष्ठ भुजाओं, बड़े सिर एवं विशाल नेत्रों वाले एक भारी–भरकम शरीर को देखती हूं और यदि आप कहते हैं – 'हाँ' तो इससे भगवान के अस्तित्व के प्रमाण का एक सूत्र मिलता है। ईश्वर का अस्तित्व है, या नहीं – यह प्रश्न ही अपने आप ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करता है।

आप जो कुछ भी देखते हैं, ईश्वर ही है, जो कुछ सुनते हैं, जो कुछ चखते हैं, जो कुछ सूंघते हैं, जो भी कुछ अनुभव करते हैं, वह सब कुछ ईश्वर ही है। ये सब उसके व्यक्त रूप हैं। भौतिक शरीर का सम्बन्ध 'विराट' से सूक्ष्म शरीर का सम्बन्ध 'हिरण्यगर्भ' से और कारण शरीर का सम्बन्ध ईश्वर से है। अब भला इस लघु 'मैं' का अस्तित्व कहाँ रहा। अपने चतुर्दिक घटित होने वाली दैवी घटनाओं पर किंचित विचार करने से यह पता चलता है कि हमारी आकांक्षाओं से भी उच्चतर एक नियम है, जो घटनाओं का नियमन करता है, कि हमारा कठोर श्रम सर्वथा अनावश्यक एवं निष्फल ही है कि हम मात्र अपने सुख–साध्य, सरल एवं यदृच्छ कार्य में ही समर्थ हैं तथा यह कि संयम की सीमा में रह कर हम दिव्य बन सकते हैं विश्वास और प्रेम, विश्वास–युक्त प्रेम हमको चिन्ताओं के बहुत बड़े भार से मुक्त कर देता है।

हे मेरे बन्धुओं ! ईश्वर का अस्तित्व है। प्रकृति के अन्तस्तल और प्रत्येक मनुष्य के संकल्प से ऊपर एक आत्मा है, जिसके कारण हममें से कोई विश्व का अहित नहीं कर सकता। उसने प्रकृति में इतना प्रबल आकर्षण कूट–कूट कर भर रखा है कि यदि हम उसके परामर्श के अनुकूल चलते हैं, तो उन्नति करते हैं और यदि हम उसके प्राणियों को आघात पहुँचाने का प्रयास करते हैं तो हमारे हाथ या तो स्वयं ही बँध से जाते हैं या अपनी ही छाती पीटने लगते हैं। प्रकृति की ये सभी बातें हमें श्रद्धा की ही शिक्षा देती हैं।

मित्रो! क्या आप बतला सकते हैं कि इस भूतल पर कोई ऐसा भी प्राणी है, जो मृत्यु से भयभीत न होता हो? क्या कोई ऐसा भी प्राणी है जो जब संकटों में पड़ा हो, जब उसका जीवन

डगमगा रहा हो अथवा जब वह शारीरिक कष्ट से अति–पीड़ित हो, तो भगवान का नाम न लेता हो? हे नास्तिकों! तब आप क्यों भगवान के अस्तित्व से इनकार करते हैं? संकट की स्थिति में आप स्वयं ही उसके अस्तित्व को मानते हैं। सन्मार्ग–च्युत बुद्धि एवं सांसारिक उन्माद के वशीभूत होकर आप नास्तिक बन गये हैं। क्या यह बहुत बड़ा अज्ञान नहीं है? गम्भीरता पूर्वक विचार करें। विवाद करना छोड़ दें। ईश्वर को स्मरण करें और अभी इसी क्षण अमरत्व एवं शाश्वत शान्ति प्राप्त करें।

संकीर्तन से दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। सन्त तुकाराम ने प्रेरणादायी अभंगों की रचना की। निरक्षर–अनपढ़ तुकाराम को कहाँ से ज्ञान प्राप्त हुआ था। उन्होंने संकीर्तन के माध्यम से ही ज्ञान का अजस्त्र स्त्रोत प्राप्त किया था। उन्होंने गहन संकीर्तन के माध्यम से प्राप्त भाव–समाधि के द्वारा ईश्वरीय ज्ञान के सागर में गोता लगाया था। क्या यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण नहीं है कि भगवान की सत्ता है कि ईश्वर का स्वरूप ज्ञान है और यह कि संकीर्तन का बहुत गहरा प्रभाव होता है। श्री रामकृष्ण परमहंस तो अपने नाम का हस्ताक्षर तक नहीं कर सकते थे, किन्तु फिर भी वे बड़े–बड़े विद्वानों की शंकाओं का निवारण किया करते थे। उन्होंने यह परम अन्तर्ज्ञान कहाँ से प्राप्त किया था? उन्होंने भी 'भागवत प्रभव' का उपयोग किया था।

जिसने ईश्वर को भुला दिया है, उसके लिए न तो इस लोक में और न परलोक में ही सच्चा सुख सुलभ है। जो व्यक्ति स्वार्थी जीवन व्यतीत करता है और अभिमान तथा अहंकार के वशीभूत हो अपने को अन्य व्यक्तियों से भिन्न समझता है, उसको कभी भी सच्ची शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। प्रभू का सतत् स्मरण सारे दुःखों और शोकों का निवारण कर भक्त को अमरत्व, परम आनन्द और शान्ति प्रदान करता है। आत्म–त्याग, स्वार्थपरता और अहंकार का नाश करता है। भगवान के साथ सायुज्य प्राप्त करने के लिए केवल आत्म–त्याग ही सबसे छोटा मार्ग है।

'आहार' का अर्थ भोजन है। यह इसका शब्दार्थ है। विस्तृत भाव में इसका अर्थ है – जो स्व – स्व इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया जाये। आपको अपने मन को आध्यात्मिक आहार देना चाहिए। मन तभी एकाग्र हो सकेगा। वह तभी पवित्र होगा। तभी आपको आत्म–साक्षात्कार प्राप्त हो सकेगा। आपके नेत्रों को अपने इष्टदेव के चित्र या अन्य किसी पवित्र वस्तु के दर्शन करने चाहिए। कानों को उपनिषदों, रामायण या भागवत का श्रवण करना चाहिए तथा जिव्हा को ईश्वर–विषयक बातें करनी चाहिए। ये इन्द्रियों और मन के लिए पवित्र आध्यात्मिक भोजन है।

मेरे मूक गुरु

वन्दन, नमन, प्रणिपात, जय
हे जगत के स्वामी!
जीवन भर तुम मुझे बनाते–संवारते
और मेरा पथ प्रदर्शन करते हो,

तुम ही मुझे अन्न, जल और वस्त्र देते
और आरोग्य प्रदान करते हो।
तुम मेरे मूक गुरु हो,
मेरे हृदय में रहते,
मेरे मन को दिशा एवं संकल्पों को उत्साह देते हो,
मेरे कर्म–फल देते,
मेरा अज्ञान दूर करते और
अन्त में मुझे अपने जैसा ही बना देते हो।
हे प्रभु, मेरे स्वामी, मेरी आत्मा, मेरे प्राणनाथ!
मुझे पावन बना दो,
मुझे आध्यात्मिक शक्ति दो,
इस मन और इन्द्रियों को संयत करने, और
प्रलोभनों का सामना करने के लिए।
मुझे अपने में ही स्थित हो जाने दो, सदा के लिए

ब्रह्म–विचार की महत्ता

स्नातं तेन समस्त तीर्थ सलिलैः सर्वापि दत्तावनि।
यज्ञानां च कृतं सहस्त्रमखिला देवाश्च संपूजिताः।।
संसाराच्च समुद्धृताः स्वपितरस्त्रैलोक्य पूज्योऽप्यसौ।
यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्यं मनः प्राप्नुयात्।।

जिस भाग्यवान का मन एक क्षण भी ब्रह्म विचार में स्थिर हो जाता है उसने मानो समस्त तीर्थों के जल से स्नान कर लिया है सारी भूमि दान कर दी है। सैकड़ों यज्ञ कर लिये हैं। सभी देवताओं का पूजन कर लिया है। अपने पित्तरों का संसार से उद्धार कर लिया है और वह त्रैलोक्य पूज्य भी हो जाता है।

उग्रवाद से प्राण रक्षा

– जगदीश राए बंसल 'अधम', विकासपुरी, नई दिल्ली

दोहा : जाको राखे सांईयां मार सके ना कोए।
बाल न बांका करि सके, जो जग बैरी होए।।

हमारे आपके और प्राणी मात्र के भाग्य विधाता त्रय जग पावन अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक योग योगेश्वर आनन्दकन्द महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं आराध्यदेव योग योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज किस पर किस समय और किस स्थान पर अपनी कृपा वर्षा बरसाते है, यह समझना तो उच्च कोटि के साधक के बलबूते से बाहर की बात है। मगर अपने पतित पावन दाता के श्री चरणों का तनिक भी चिन्तन करने वाले प्राणियों पर अनाथनाथ की अकारण कृपा हो ही जाती है। एक गुरुभाई जी की ये लाइनें खरी उतरती हैं :–

गुरुदेव के प्यारे बच्चों को,
पग पग पर सहारा मिलता है।

इसी तरह का एक कृपा प्रसंग श्री सिद्ध गुफा सवाई धाम से अनन्य श्रद्धा रखने वाले आदरणीय वरिष्ठ गुरुभाई श्री ईश्वर दत्त शर्मा जी ने दिनांक पन्द्रह जुलाई सन् 2011 को गुरु पूर्णिमा के शुभ अवसर पर सवाई धाम आश्रम में बतलाया।

आदरणीय 61 वर्षीय गुरु भाई श्री शर्मा जी अपने भरे पूरे परिवार के साथ हरियाणा राज्य के जीन्द में रहते हैं। यहाँ पर यह बताते चलें कि अपने त्रिलोकी नाथ गुरु चन्द्र मोहन जी महाराज अपने योग प्रचार कार्यक्रम को जीन्द में नियमित रूप से रखते थे। गुरु कृपा से यहाँ के गुरुभाई बहिन, गुरु जी के तेजस्वी बच्चे, सारे जीन्द को गुरुमय बना देते थे। अस्तु। अब अपने मुख्य विषय पर आते हैं।

श्री शर्मा जी ने सिद्ध शिरोमणी लीलाधारी आराध्यदेव गुरु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से सन् 1977 में दीक्षा लेने का सौभाग्य प्राप्त किया था। जबकि इनकी धर्म परायणा पत्नि श्रीमती आनन्द शर्मा ने शर्मा जी के साथ प्रणय सूत्र में बँधने के पश्चात् सन् 1980 में यह गौरव प्राप्त किया। आदरणीय शर्मा जी दिनांक 31–1–2008 को हरियाणा बिजली निगम के उचाना केन्द्र से उपमण्डल अधिकारी के पद से सेवा निवृत्त हुए हैं। कुछ विराम के पश्चात् वर्तमान में श्री शर्मा जी सवाई धाम में नव निर्मित कृषि भूमि पर चार दिवारी आदि के निर्माण सेवा कार्य में मन वचन और कर्म से समर्पित हैं।

प्रस्तुत कृपा प्रसंग सन् 1996 के दिसम्बर माह का है। आपको याद दिला दें कि उन

दिनों खालिस्तानी उग्रवाद का ज्वर अपने यौवन पर था। उग्रवादी निर्अपराधियों को लाईन में खड़ा करके गोलियों से भून देते थे। हृदय विदारक कृत कर्म ही उनके शौर्य का प्रतीक था। इन दिनों श्री शर्मा जी पंचकूला (चण्डीगढ़) में सेवारत थे। दो दिवसीय अवकाश के कारण श्री शर्मा जी अपने गृह नगर जीन्द आए हुए थे। अवकाश के पश्चात् भाई जी अपनी भार्या के संग अपराह्न चार बजे चलने वाली अन्तिम बस द्वारा जीन्द से पंचकूला के लिए रवाना हुए।

बस यात्रियों से परिपूर्ण थी और अपने लक्ष्य की ओर सरपट दौड़ रही थी। कुछ यात्री वार्तालाप में खोए हुए थे। कुछ यात्री निद्रामग्न थे और कुछ गाने का आनन्द ले रहे थे। जैसे ही बस अम्बाला पार कर पंजाब क्षेत्र में प्रवेश हुई तो डेराबसी तहसील मुख्यालय के समीप बस को सामने से उग्रवादियों ने रोक लिया। बस के ड्राइवर सरदार जी को उग्रवादियों ने नीचे उतार लिया। इससे पहले चतुर ड्राइवर स्थिति को भांप चुका था अतः उसने यात्रियों को सचेत कर दिया कि "उग्रवादी आ गए, जान बचा लो।" भक्त शिरोमणी की तुलसी दास जी लिखते हैं कि :

सुनहूं भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेऊ मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवन मरण, जश अपजश विधि हाथ।।

उग्रवादियों ने यात्रियों को बस खाली करने का कड़क आदेश किया। कुछ यात्री तुरन्त बस से नीचे कूद गए कि भाग चलें, मगर...? कुछ यात्री विमूढ़ से बने बस से उतर रहे थे। किसी को काटो तो खून नहीं। जिसको जैसा होश था, भगवान से दुआएँ कर रहे थे... प्राणों की भीख मांग रहे थे।

समय बड़ा बलवान रे भईया, समय बड़ा बलवान।
अपने प्राण बचा लो रे भईया याद करो भगवान।।

अपने शर्मा जी भी लीलाधारी, सिद्धों के सम्राट, सर्व समर्थ्य से आर्त पुकार सुना रहे थे जो पंक्ति बद्ध की गई है:

दया करो गुरुदेव हम पर दया करो।
आई सिर पर मौत प्रभू जी रक्षा करो।।
कितनों को दाता तूने जीवन दान दिया है।
बड़े बड़ों को तूने अभय किया है।
इस आतंक को हमसे दूर करो। दया करो ...
अब मौत के मुँह में हम जा रहे हैं।
त्राहि त्राहि नाथ हम पुकार रहे हैं।
इस खूनी होली से अभय करो।
दया करो ....

अब यहाँ नहीं कोई बचाने वाला।

आप बिन नहीं प्रभू कोई सहारा।

हे संकट मोचन रक्षा करो।

दया करो ....

इसी उहा–पोह के मध्य अपने शर्मा जी अपनी सीट से खड़े हुए तो तुरन्त ही इनकी भाग्यशाली सहधर्मिणी को ड्राइवर सीट पर एक दिव्य ज्योति दिखाई दी। देखते ही देखते अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक त्रय लोक पावन स्वयं नारायण महाप्रभू श्री रामलाल प्रकट हो गए। दर्शन करते–करते आनन–फानन में श्रीमती जी ने हाथ से स्पर्श करते हुए शर्मा जी को दबी जबां कहा बैठ जाओ, प्रभू जी आ गए ... प्रभू जी आ गए ... मेरे प्रभू जी आ गए ... मेरे प्रभू जी... अब बस से उतरने की जरूरत नहीं। महाप्रभू श्री राम लाल की जय हो ... जय हो .... जय हो... मेरे प्रभू ... मेरे प्रभू .... यहाँ पर यह बताना समीचिन होगा कि गुरु बहन श्रीमति आनन्द शर्मा को शादी से पूर्व अर्थात् दीक्षा लेने से पूर्व से ही महा प्रभूजी श्री रामलाल जी महाराज का दर्शन लाभ मिलता रहा है अत: उसने यहाँ हमारे प्रभू जी सम्बोधन न करके मेरे प्रभू जी कहा है। आगे बढ़ते हैं, कमलेश्वर वन्दना पुस्तक में एक भजन है जो यहाँ सत्य प्रमाणित होता है कि :

सुन कर करूणा पुकार गुरु जी आते हैं।

नैय्या लगा दे पार, जब लल्ला बुलाते हैं।।

शर्मा जी तुरन्त अपनी सीट पर बैठ गए और अपने गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की वाणी याद आई कि :

जहाँ इष्ट होता है वहाँ अनिष्ट नहीं होता।

अब सब कुछ ठीक ही होगा, दादा गुरु आ गए... कहते–कहते उधर देखा कि पलक झपकते ही उग्रवादी सिर पर पैर रख कर जीप द्वारा ऐसे भागे कि क्षण भर में ही हमारी आँखों से ओझल हो गए।

गुरुदेव जय जय सद्गुरु जय जय।

अखण्ड ज्योति प्रभू रामलाल जय–जय।।

जान बची लाखों पाए। इसकी कीमत कौन चुका सकता है? शेष यात्री तो महाप्रभू जी से अनभिज्ञ ही रहे होंगे और गुरु भाई शर्मा जी भी यह आंकलन नहीं कर पाए कि आशुतोष करुणा सागर सिद्ध शिरोमणी संकट मोचन दादा गुरु महाप्रभू श्री रामलाल जी महाराज ने क्या लीला की? किस भय अथवा किस चमत्कार से उग्रवादी भयभीत हो कर भागे? ऐसे सिद्धों के सरदार के श्री चरण कमलों में कोटि–कोटि नमन ...

लीलाधारी की लीला न्यारी। दुनियाँ देख देख कर हारी।।

स्वस्थ रहने की रामबाण दवा

(साभार कल्याण से)

(गतांक से आगे)

भोजन सामग्री की शुद्धता – भोजन सामग्री की शुद्धता और पवित्रता पर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है। भोजन के कच्चे सामान आटा, दाल, घी, मसाला आदि स्वच्छ और साफ बरतनों में ढककर रखे जाय। बिना ढके बरतनों में चूहे घुस जाते हैं और वे वहाँ मल–मूत्र का त्याग कर देते हैं। चूहों के मल–मूत्र में भयानक विष होता है। खुले बरतनों में दूसरे जानवर भी घुसकर सामान को गंदा कर देते हैं। चौके में भोजन बनाकर जिन बरतनों में रखा हो, उन्हें ढककर रखना चाहिए। दूध, दही, मिठाई आदि पदार्थ ऐसे स्थानों पर रखने चाहिए, जिनसे उन पर मक्खी–मच्छर न बैठ पायें। पंगत में भोजन करने बैठे तो सबके साथ उठना चाहिए।

भोजन के बाद के कृत्य – भोजन करने के अनन्तर दाँतों को खूब अच्छी तरह साफ करना चाहिए, ताकि उनमें अन्न का एक भी कण न रह जाय। अन्नकण दाँतों में रह जाने पर दाँत कमजोर हो जाते हैं तथा उससे पायरिया का रोग भी हो जाता है। दाँतों के बीच में यदि फाँक हो गयी हो तो उन्हें नीम आदि के तिनके से निकालकर अच्छी तरह धो लेना चाहिए। अपने शास्त्रों में भोजन के अनन्तर सोलह कुल्ले करने का विधान है। कुल्ला करते समय मुँह में पानी रखकर दस–पन्द्रह बार आँखों को जल के छींटे देकर धोना चाहिए। दिन में जितनी बार मुँह में पानी लें उतनी बार यदि यह क्रिया की जाय तो आँखों में बड़ा लाभ होता है। भोजन के उपरान्त लघुशंका भी तुरंत करनी चाहिए। यह स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है, इससे मूत्रसम्बन्धी बीमारी का बचाव होता है।

भोजन के बाद दौड़ना, कसरत करना, तैरना, नहाना, घुड़सवारी करना, मैथुन करना और तुरंत ही बैठकर काम करने लगना स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है।

भोजन के बाद लगभग सौ कदम चलना चाहिए तथा चले के बाद लगभग 10 मिनट दोनों घुटने पीछे मोड़कर वज्रासन में बैठना चाहिए, तदनन्तर विश्राम की मुद्रा में सीधे लेटकर 8 श्वास तथा दाहिनी करवट में 16 श्वास और बायीं करवट लेटकर 32 श्वास लेने की विधि है। इससे पाचनक्रिया ठीक रहती है तथा यह स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभप्रद है।

शयन-- रात में भोजन करने के तुरंत बाद सोना नहीं चाहिए। सोने से पूर्व सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय और भगवान् का स्मरण अवश्य करना चाहिए। सोने के पूर्व लघुशंका आदि से निवृत्त होकर हाथ–पैर धोकर उन्हें भलीभाँति पोंछकर स्वच्छ बिछावन पर पूर्व या दक्षिण की ओर सिर

शेष पृष्ठ 40 पर

सिद्धयोग साधक मण्डल दतिया का योग शिविर समारोह सम्पन्न

– अनिल दुबे, मुड़ियन का कुआं, दतिया, म.प्र.

जगत जननी माँ पीताम्बरा पीठ की पवित्र नगरी दतिया में प्रति वर्ष की भांति इस वर्ष भी योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी एवं प्रातः स्मरणीय योगीराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन महाराज जी की कृपा से चार दिवसीय योग साधना शिविर का आयोजन सिद्धयोग मण्डल दतिया के समस्त गुरु भाईयों के सहयोग से बड़ी ही धूमधाम से किया गया। योग साधना शिविर में गुरुदेव के अतिप्रिय लाडले शिष्य योगाचार्य डॉ. दासलाल जी सिद्धगुफा के व्यवस्थापक एवं सिद्धयोग पत्रिका के सम्पादक के यौगिक संरक्षण में दिनांक 10 नवम्बर से 13 नवम्बर 2011 तक चार दिवस का यौगिक सत्संग एवं स्वास्थ्य शिविर आयोजित किया गया।

योग साधना शिविर निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार प्रातः 3 बजे से 10 बजे तक चला जिसमें ध्यान योग जीवन तत्व क्रियायें चिकित्सा परामर्श, गीतापाठ, आरती एवं सार प्रवचन हुए सायंकालीन 5 बजे से रात्रि 9 बजे तक भजन संध्या, संकीर्तन, प्रभु जी की दिव्य आरती एवं योग सिद्धान्तों पर व्याख्यान श्री आचार्य जी द्वारा दिये गये।

आचार्य डॉ. दासलाल जी योगाचार्य द्वारा योग की सरलतम शब्दों में व्याख्या की गयी जिस विद्या के जान लेने से कुछ जान लिया जाता है कुछ जानने को शेष नहीं रह जाता है उसी का नाम योग विद्या है। आचार्य जी द्वारा दिये गये व्याख्यान इतने सरलतम ढंग से समझाये गये कि पंडाल में उपस्थित जन समुदाय एवं गुरु भाई बहिनों के अंदर तक व्याख्यान उतर गये और कई लोगों ने मुझसे कहा कि आचार्य जी ने बहुत अच्छे ढंग से समझाया कि सब कुछ मुझे समझ में आ गया, बस अब तो बात है आचार्य द्वारा बताये गये नियमों का पालन करना "ध्यान योग परोनित्यम्" ध्यान योग जीवन को सब प्रकार से कृत कृत्य कर देता है। यह गीता का सार है। आचार्य जी ने गुरु मंत्र पर एवं ध्यान पर विशेष बल दिया कहा कि सदाचार के जीवन पर चलने से गुरुदेव के बतलाये मार्ग पर चलोगे तो इस योग की अमर विद्या के अधिकारी बन जाओगे एवं गुरुदेव की असीम कृपा के पात्र बन जाओगे इसमें कोई संदेह नहीं है। इसलिए कम से कम 2 घण्टे जाप ध्यान की आदत अवश्य डालो।

योग को अपनाओ दिव्य जीवन पाओगे एवं योग ही दिव्य अविनाशी जीवन है। आचार्य जी ने योग की पराकाष्ठा पर विस्तार से समझाया अपने मन को योग द्वारा अन्तर्मुखी बनाओ योग पर चलने पर सतोगुण का प्रभाव पड़ने लगता है। आत्मा जब स्वरूप में अवस्थित हो जाती है तो आनन्द ही आनन्द आने लगता है। हमारा मन शक्तियों का भण्डार है लेकिन हमको शक्तियों का ज्ञान नहीं है। यह योग द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। जो गुरुदेव का भक्त है

उसके दोनों हाथों में लड्डू ही लड्डू है। योग दर्शन गीता वेद, उपनिषद् एवं गुरुदेव के संस्मरण द्वारा योग की महिमा पर प्रकाश डाला।

आचार्य जी ने राजयोग के प्रणेता महर्षि पातंजलि के योग सूत्र के आठ अंगों का विस्तार पूर्वक वर्णन करते हुए समझाया कि यम–आत्म नियंत्रण करते हुए समझाया कि यम–आत्म नियंत्रण के अभ्यास हैं। नियम जीवन के विकास के लिए आवश्यक आसन स्वस्थ रखने हेतु प्राणायाम प्राणशक्ति का विस्तार प्रत्याहार इन्द्रियों और मन की वृतियों को अंतर्मुख करना धारणा, ध्येय, वस्तु में मन की गहराईयों में उतरना जीवन का परम लक्ष्य की प्राप्ति है। प्रत्येक योगाभ्यासी को यम नियम का पालन करने पर आचार्य जी ने जोर दिया, यम नियम सदाचार के मार्ग हैं। प्रत्येक धार्मिक व्यक्ति को यम नियम का पालन करना ही चाहिए। आचार्य जी ने गुरुदेव भगवान के बतलाये नियम ध्यान पर 2 घण्टे बैठने पर विशेष जोर दिया।

आचार्य जी ग्राम आसेर में गुरुदेव के वरिष्ठ गुरुभाई श्री आशाराम गोस्वामी के यहाँ गये जहाँ यौगिक सत्संग भी हुआ उसके उपरान्त ग्राम इकारा के पास सिद्धगुफा पहाड़ी पर श्री चन्दन सिंह के यहाँ गये वहां भी यौगिक सत्संग का ग्रामीण लोगों ने पुण्य लाभ प्राप्त किया। आचार्य जी विपिन बिहारी चौरसिया के आग्रह पर श्याम वाटिका पर भी गये जहाँ सभी ने सतसंग का लाभ प्राप्त किया।

अन्तिम दिन आचार्य जी को सर्किल जेल की जेल अधीक्षक ऊषा राजे के आग्रह पर कैदी भाईयों को योग साधना एवं स्वस्थ रखने के उपाय एवं जीवन को किस प्रकार धन्य बनाया जाये, यह बताया।

आचार्य डॉ. दासलाल जी ने सर्किल जेल में अपने व्याख्यान में कैदी भाईयों से कहा कि पिछला भूलें व आगे का जीवन सुधारें अगर हमसे कोई गलती हुई है उसे आगे न करने का संकल्प लें। कुछ बंदी भाई ऐसे भी है जो कोई गलती न किये हुए भी जेल में बंद है। वो अपना प्रारब्ध समझकर और भगवान की ऐसी मंशा है ऐसा समझकर शान्त चित्त होकर भगवान का भजन करें और योग प्राणायाम कर अपने दिमाग में शांति का संचार कर अपने जीवन को सफल बनाने का प्रयत्न करें और पिछला भूल आगे का जीवन सुधारें। जेल में बंदी भाईयों को योग ध्यान गीता का महत्व बताते हुए कहा कि सामाजिक वातावरण में, आपसी मन मुटाव, अशान्ति, क्रोध बदला लेने की भावना, हिंसा गलत कार्य की ओर चलने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है इसके लिए योग ध्यान बहुत ही पथ प्रदर्शक है। योग ध्यान द्वारा निरन्तर अभ्यास करते हुए आप उस असीम आनन्द को प्राप्त कर सकते हैं। सभी बंदी भाईयों ने हाथ उठाकर बुरे रास्ते पर न चलने का संकल्प किया। कार्यक्रम में गंगापुर सिटी, सागर, गंजबासौदा, गुना ग्वालियर भोपाल, भिण्ड के गुरु भाईयों ने उपस्थिति द्वारा सक्रिय रूप से भागीदारी दी गई। संगीत में गुरुदेव के योग भजनों, संकीर्तन से सारा वातावरण आनन्द से सराबोर कर दिया।

प्रतिदिन रात्रि में भण्डारा हुआ। यह प्रभुजी की अनुपम कृपा का ही फल है कि इस वर्ष

भी योग शिविर में बड़ी संख्या में लोग प्रभुजी के दरबार से जुड़े है। 13 नवम्बर 2011 को सामूहिक प्रभु जी का भण्डारा हुआ। इस वर्ष मण्डल के गुरु भाईयों का सहयोग काफी सराहनीय रहा और भविष्य में भी ऐसा सहयोग प्राप्त होता रहे ऐसा सभी गुरुभक्तों से अपेक्षा है।

14 नवम्बर प्रातः 5 बजे गुरु भाईयों ने अपने आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज को भाव – भीनी विदाई दी गई।

जय गुरुदेव !

(पृष्ठ 40 का शेष)

करके सोना चाहिए। हवादार घर जिसमें भगवान के चित्र टंगे हों, शयन के लिए उत्तम स्थान माना गया है। भगवान का ध्यान करके बायीं करवट सोना स्वास्थ्य के लिए उत्तम है। सामान्यतः 6–7 घण्टे सोने पर नींद पूरी हो जाती है। अभ्यास कर लेने पर छः घण्टे से कम भी सोया जा सकता है।

सोने के समय मुँह ढककर या मोजा पहनकर नहीं सोना चाहिए। रात में जल्दी सोना तथा प्रातःकाल जल्दी उठना स्वास्थ्य के लिए विशेष लाभप्रद है। शयनका स्थान हवादार, स्वच्छ तथा साफ होना चाहिए।

स्वास्थ्य रक्षा के मूल आधार

स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि शास्त्रोक्त दिनचर्या ऊपर प्रस्तुत की गयी है, वस्तुतः स्वास्थ्यरक्षा के पाँच मूल आधार हैं – (1) आहार, (2) श्रम, (3) विश्राम, (4) मानसिक सन्तुलन और (5) पंचमहाभूतों का सेवन।

(1) आहार – आहार के सम्बन्ध में ऊपर विस्तार से वर्णन किया जा चुका है। आयुर्वेद में तीन प्रकार के भोजनों का उल्लेख मिलता है – (1) शमन करने वाला भोजन, (2) कुपित करने वाला भोजन तथा (3) सन्तुलन रखने वाला भोजन। वात–पित्त और कफ – इन तीनों के असन्तुलन से रोग का जन्म होता है। ये तीनों रोग के प्रमुख कारण हैं। जो भोज्यपदार्थ इन तीनों का शमन करते हैं वे शमनकारी और जो इन तीनों को कुपित करते हैं वे कुपितकारी तथा जो तीनों को सन्तुलित किये रहते है उन्हें सन्तुलनकारी भोजन कहा जाता है। इन तीनों का स्वभाव से गहरा सम्बन्ध रहता है। इसलिए स्वभाव और परिस्थिति के अनुसार भोजन करने की अनुमति दी जाती है। शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्ति के भोजन की मात्रा और उसका प्रकार जो होगा वह मानसिक श्रमशील व्यक्ति के भोजन की मात्रा और प्रकार से भिन्न होगा।

क्रमशः

अथर्व वेद

ब्रह्मचर्येण तप सा देवा मृत्युमुपाघ्नत्।
इन्द्रोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वरा भरत्।।

ब्रह्मचर्य का पालन और तपस्या करके देव पुरुषों ने मृत्यु को मार भगाया है। ब्रह्मचर्य का पालन कर यह जीवात्मा इन्द्रियों से दुर्लभ सुख को प्राप्त करता है।

विमर्श - जीवात्मा अपने कर्मों का शुभाशुभ फल भोगने के लिए, नाना प्रकार की ***योनियों में बार-बार जन्म लेता है और मरता है।*** मनुष्य योनि में वह फल भोगने के साथ ही नया कर्म भी करता है जबकि इस योनि के अलावा ***अन्य सभी योनियों में जीवात्मा सिर्फ पूर्व कर्मों का फल भोगता है नया कर्म नहीं करता।*** ऐसी दुर्लभ और अत्यन्त उपयोगी मनुष्य योनि का समय, नाना प्रकार के विषयभोग और कुकर्मों को करने में उलझा रह कर, बेकार व्यतीत कर देता है और ***इन कर्मों का फल भोगने के लिए विभिन्न योनियों में भटकता रहता है।*** इस मनुष्य जीवन का सदुपयोग करने, उचित उपभोग करने और अच्छे कर्म पर आत्मोन्नति करने के लिए हमें ब्रह्मचर्य का पालन और व्यायाम का नियमित अभ्यास अवश्य करना चाहिए ताकि हम इस जीवन में लम्बे समय तक स्वस्थ और बलवान बने रह सकें और शुभ कर्म करते रह सकें।

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तो का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैयाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा